

काश्यपसंहिता

काश्यप संहिता उपदेष्टा – महर्षि काश्यप

तंत्रकर्ता – वृद्ध जीवक (कुमारभच्य)

प्रतिसंस्कर्ता – वात्स्य

अध्याय संख्या – एकूण – 200

- 1) सूत्रस्थान – 30 2) निदानस्थान – 8 3) विमान स्थान – 8 4) शारीरस्थान – 8
 5) इन्दिय स्थान – 12 6) चिकित्सास्थान – 30 7) कल्पस्थान – 12 8) सिध्दी स्थान-12 8) खिलस्थान 80
 खिलस्थान में केवल – 25 अध्याय प्राप्त होते हैं।

काश्यप संहिता वैशिष्ट्य -

- 1) कुल 15 आचारों का वर्णन प्राप्त होता है
 - 2) चतुर्थ मास में मन का प्रादुर्भाव मानते हैं
 - 3) आतुरालय को अग्निधार शब्दप्रयोग
 - 4) हुदय को पंचकोष व शरीर को षटकोष कहा है।
 - 5) 64 सतिका रोगों में ज्वर को प्रधान बताया है।

सत्रस्थान -

लेहाध्याय – (बालरोग नोटस +)

- 1) मेधावर्धनार्थ – कल्याणक घृत, पंचगव्य घृत, ब्राह्मी घृत
 - 2) ग्रहबाधानिराकरणार्थ – अभय घृत (घटक - ब्राह्मी, सिद्धार्थक, वचा, कुष्ठ, सैंधव, सारिवा)
न पिशाचा न रक्षांसि न यक्षा न च मातरः । प्रबाधन्ते कुमारं तं यः प्राशनीयादिदं घृतम् ॥
 - 3) शरीर वर्धनार्थ – संवर्धन घृत
निव्याधिर्वर्धते शीश्मं संसर्पत्याशु गच्छति । पुण्ड्रमुकाश्रुतिजडा युज्यन्ते चाशु कर्मभिः ॥

क्षीरोत्पत्तीव्याय (अध्याय -19) (बालरोग नोट्स)

दन्तजन्मीक अध्याय (अध्याय – 20) (बालरोग नोट्स +)

- दंत संख्या – 1) हानव्य = 20
 2) राजदन्त = 4
 3) वस्त = 4
 4) दंष्टा = 4 कल = 32

विकृत दंतोत्पत्ती शान्त्यर्थ – मारुति इष्टि यज्ञ या प्राजापत्य यज्ञ का विधान

स्नेहाध्याय (अध्याय -22)

स्नेह योनी - द्विविध 1) स्थावर 2) जांगम

चतुर्विध विकल्प = 1) घृत 2) वसा 3) मज्जा = तीनो प्राणीज 4) तैल – वानस्पतीज

घृत तैल वसा मज्जा – यथापर्व श्रेष्ठ घृत – योनी व शक्तिविशोधक (चरकानुसार तैल)

तैल गण – भग्नच्यत संधान (चरकानसार वसा), धातव्रणशोधन

विरेचनार्थ – एरंड व शंखीनी तैल योग्य

उष्णोदक अनुपान निषेध – पय, दधि, मधुयुक्त द्रव्य, पित्ताधिक्य, रक्तस्त्राव, गर्भच्यवन, गर्भदाह

स्नेहप्रविचारणा – 20 (उर्ध्वकर्म व अधःकर्म का विचारणा मे समावेश)

अच्छस्नेहपान मात्रा – त्रिविध

1) हस्व – दिनार्ध मे पचन होनेवाली

2) मध्यम – दिन मे पचन होनेवाली

3) उत्तम – अहोरात्र मे पचन होनेवाली

स्नेहपान अयोग्य – गर्भीणी, प्रसूता, क्षीरप, दुग्धातिवृद्धी, इलेष्पित्तोपहतान्तरग्नि, मूच्छा, अरूचि, ग्लानी भृशाआम व तृष्णा, ग्लामय, बस्ती व नस्य लिए हुए, स्नेहमादात्यय,

मृदू कोष्ठ मे विरेचन – द्राक्षा, पीलु, त्रिफला, गोरस, तपताम्बु, तरुण मद्य, इनसे विरेचन होता है।

स्नेहाजीर्ण प्रकारानुसार लक्षण –

1) तैल से हो तो – विदाह

2) घृत से हो तो – मूच्छा

3) वसा से हो तो – हुल्लास

4) मज्जा से हो तो – गौरव

स्नेहाजीर्ण से तृष्णा, शूल व परिकर्तिका हो तो – स्नेहजीर्ण व्यतीत काल मे प्रच्छर्दन करे

अच्छस्नेह निषेध – स्नेहद्वेषी, क्षाम, मृदूकोष्ठ, स्नेहमद्यनित्य, अध्व, प्रजागर, स्त्रीस्त्रान्त,

इनमे विचारणा स्नेह देना चहिए।

ऋतुनुसार स्नेह सेवन –

1) मज्जा वसा – वसंत

2) तैल – प्रावृट

3) सर्पि – शरद

TIERRA

स्वेदाध्याय (अध्याय -23)

बालको मे स्वेद – बालानाम कृशानां स्वेद आवस्थिको हितः ।

कृश एवं मध्यबल बालको मे आवस्थिक स्वेद देना चहिए।

दोषानुसार स्वेद – 1) वाताधिक्य – स्निग्ध स्वेद

2) कफाधिक्य – रुक्ष स्वेद

3) वात कफाधिक्य – साधारण स्वेद

वृषण हुदय चक्षु स्थाने – मृदू स्वेद / न वा

शेष वंक्षण संधि – मध्यम अतिस्विन्न मे – विसर्प समान चिकित्सा

बालक लोचन व हुदय स्थाने स्वेद – कुमुद उत्पल पद्म से आच्छादन कर पश्चात स्वेदन

जन्मप्रभृति (जन्म से लेकर) बालक मे स्वेद प्रकार – 8

1) हस्तस्वेद 2) प्रदेह 3) नाडी स्वेद 4) प्रस्तर स्वेद 5) संकर स्वेद 6) उपनाह 7) अवगाह 8) परिषेक

बालक मे हस्तस्वेद –

जातस्य चतुरो मासान् हस्तस्वेदं प्रयोजयेत् । (चार मास तक)

प्रदेह स्वेद योग्य – गल, कर्ण, मन्या, शिर, अक्षि, चिबुक, उर, अभिष्यंद के कारण शरीर मे शोथ होनेपर

उपकल्पनीय अध्याय (अध्याय -24)

अजीर्ण प्रकार - 4

- 1) आमाजीर्ण – यथाभृक्त इव
- 2) विदग्धाजीर्ण – धूमोद्गार
- 3) श्लेष्माजीर्ण – गुरुत्व
- 4) रसशेषाजीर्ण – हुद्रव

अजीर्ण चिकित्सा -

- 1) आमाजीर्ण चिकित्सा – उद्दरण (लंघन द्वारा पाचन)
- 2) विदग्धाजीर्ण – प्रावृतः स्वपेत (प्रातःकाल में शयन)
- 3) श्लेष्माजीर्ण – स्वेदन
- 4) रसशेषाजीर्ण – शोषण

वेदनाध्याय (सूत्रस्थान – 25) एकुण 30 व्याधी लक्षण वर्णनचिकित्सासंपदीय अध्याय (अध्याय 26)

चतुष्पाद वर्णन – भिषक, भेषज, आतुर परिचारक

आतुरसंपद में साध्यरोगता व परिचारक संपत मे विपक्वकषायता (कषायादी औषध बनाने मे योग्य)

अस्य पादचतुष्कस्य मन्यते श्रेष्ठमातुरम् ।

चतुष्पाद मे – प्रजापति काश्यपानुसार भिषक, श्रेष्ठ माना गया है ।

रोगाध्याय

(अध्याय – 27)

व्याधी – धातु स्थूण आत्मवैषम्यं तद दुःखं व्याधिसंज्ञकम् ।

धातु स्थूण असात्यं तु तत्सुखं प्रकृतिश्च सा ॥

1) वातस्थान – अधोनाभी, अस्थी मज्जा

2) पित्तस्थान – अमाशय, स्वेद, रक्त, लसिका

3) कफस्थान – मेदः, शिर, उर, ग्रीवा, बाहु

हुदय – कफ का विशेष स्थान

आमाशय – पित्त का विशेष स्थान

पक्वाशय – वात का विशेष स्थान

निज व आगन्तु रोग चिकित्सा –

तस्माद् आगन्तु रोगाणामिष्टते निजवत् क्रिया । निजानां पूर्वरूपाणि दृष्ट्वा संशोधनं हितम् ॥

ओज – स्थान – हुदय

स्वरूप – श्लेष्मानुपश्लिष्ट (श्लेष्मा से रहित), अश्यावं रक्तपीतकम्

नानात्मज विकार गणना – चरकानुसार

रक्तज रोग – वैवर्ण्य, संताप, शिरोरोग, अक्षिरोग, दौर्बल्य, दौर्गर्ध्य, तमःप्रवेश, विसर्प, विद्रधी, उपजिह्वा, गुल्म, रक्तप्रमेह, प्रदर, अतिनिद्रा, मन्दाग्नि, स्त्रोतसां पूतिभाव, स्वरक्षय, स्वेद, मद, अनिल, असृक, तृष्णा अरुचि, कुष्ठ, विचर्चिका, कण्डू, पिङ्का, कोठ.रक्तज रोग चिकित्सा – विरेचन, विसर्प समान चिकित्सा, स्त्रंसन, विशेषतः रक्तमोक्षण

लक्षणाध्याय (अध्याय 28)

योनी भेद -

- 1) शक्टाकार – अपत्यलाभाय
- 2) उत्क्षिप्ता – अनपत्यत्वाय
- 3) लम्बा – अपत्यवधाय
- 4) मध्यनिबिडाय – कन्याप्रजनाय
- 5) उन्नता रमणीया मांसला – पुत्रजन्मने

यथा वक्त्रं तथा वृत्तं यथा चक्षुं तथा मनः। यथा स्वरस्तथा सारो यथा रूपं तथा गुणः ॥

मुख नुसार वृत्त (आचरण), चक्षुनुसार मन होता है; स्वर अनुसार सार व उसके अनुसार रूप होता है ।

सत्त्व भेद - 3

- 1) कल्याण से उत्पन्न – श्रेष्ठ - 8 भेद
 - 2) क्रोध से उत्पन्न – मध्यम - 7 भेद (राजस) इसमें ‘याक्ष’ चरक से अधिक
 - 3) मोह से उत्पन्न – अधम - 3 भेद (तामस)
- 1) शुद्ध (कल्याण) मे – प्राजापत्य सत्त्व अलग वर्णन . इतर चरकसमान
शुद्ध सत्त्व लक्षण – आरोग्य, शान्ति, रूप, ज्ञान, विज्ञान, आर्यता, दीर्घायु, सुखप्राप्ति (सुखात्यक)

सत्त्व गुण - सत्त्वं प्रकाशकं विधी, रजश्चापि प्रवर्तकम् ।

तमो नियामकं प्रोक्तम् अन्योन्यमिथुनप्रियम् ॥

सत्त्व व धात्री - समानसत्त्वा बालानां तस्माधात्री प्रशस्यते ।
उद्वेगविनासकारी विपरीता न शस्यते ॥

सारता - 9 सप्तधातु + सत्त्वसार + ओजसार

त्वकसार बालक लक्षण – रोगरहीत, भोगी, प्रसन्नव्यं जनच्छवि, सद्यक्षतप्ररोह

रक्तसार – अरूपाभास

तृतीय -विमानस्थान -

1) शिष्योपनयनीय अध्याय -

गुरु गुण, शिष्य गुण, अध्ययन, अध्यापन विधी, आयुर्वेद के अष्ट अंग

कोमारभृततंत्र अष्टानां तन्नानाम् आदयमुच्यते ।

आयुर्वेद – अर्थवेद का उपवेद, आयुर्वेद उत्पत्ती ऋम वर्णन

दोष व आश्रकारक देवता –

1) वात – मारुत तथा आकाश देवता का आश्रय

2) पित्त – अग्नि तथा आदित्य देवता का आश्रय

3) कफ – सोम व वरुण देवता का अश्रय

ऋतुए – 5 पर रसप्रयोजनार्थ – 6

चतुर्थ – शारीरस्थान –

अध्याय नाम उपलब्ध नहीं

कलास्वरूप काल प्रकार -2

1) उत्सर्पिणी – शुभ काल

2) अवसर्पिणी – अशुभ काल

दोनों के पुनः तीन भेद –

1) उत्सर्पिणी – 1) आदियुग 2) देवयुग 3) कृतयुग

2) अवसर्पिणी – 1) त्रेतायुग 2) द्वापर युग 3) कलियुग

युगों के अनुसार व्यक्ति के संहनन एवं गर्भकाल का वर्णन

1) कृतयुग – नाशगणी संहनन – सिर कपाल रहीत यह मानव प्रारंभ सेही स्तनपान नहीं करता, काल 7 मास

2) त्रेता युग – अर्धनारायण संहनन – शारीर एक अस्थीयुक्त आकुंचन प्रसारण अक्षम, गर्भकाल – 8 मास

3) द्वापर युग – केशिक संहनन – अस्थीया केश समान अणु व सुषिर, गर्भकाल – 9 मास

4) कलियुग – प्रज्ञप्ति पिशीत संहनन – सुषिर व मज्जा से युक्त अस्थी, गर्भकाल – 10 मास

कलियुग में जन्मा बालक एक वषठ पश्चात चलने एवं बोलने लगता है

असनानगोत्रीय अध्याय –

मासानुमासिक गर्भवृद्धी वर्णन, अध्याय खण्डित स्वरूप में

तृतीय मास सेही गर्भवृद्धी वर्णन

गर्भ उत्पत्ति – पुरुष बीज रक्त से परिवेष्टीत होकर – गर्भ उत्पत्ति

शुक्र से अस्थी व मांस निर्माण होते हैं। अस्थी व मांस से स्नायुओं विनिर्माण होता है

तत पश्चात सर्व इंदिय व सर्वांगावयव निर्माण होता है।

तृतीय मास	तृतीय मासि युगपत् निर्वर्तने यथाक्रमम् । प्रस्पन्दते चेतयति वेदनाश्च अवबुध्यते ॥ सूक्ष्मप्रव्यक्त करणः तृतीये तु मनोऽधिका ॥
चतुर्थ मास	। चतुर्थे स्थिरतां याति गर्भः कुक्षो निरामयः ॥ गुरुगात्रत्वमधिकं गर्भिण्यास्तत्र जायते ॥
पंचम मास	मांसशोणितवृद्धिदस्तु पण्चमे मासि जीवक । गर्भिणी पण्चमे मासि तस्मात् काश्येन युज्यते ।
षष्ठ मास	बलवर्ण ओजसां वृद्धीः षष्ठे मातुः श्रमो, अधिकः ॥
सप्तम मास	सर्वधात्वंग संपूर्णो वातपित्तकफान्वितः । सप्तमे मासि तस्माच्च नित्यक्लान्ताऽन्न गर्भिणी ॥
अष्टम मास	अष्टमे गर्भिणीगर्भावाददाते परस्परम् । ओजो रसवहायुक्तः पूर्णत्वाच्छलयत्यपि ॥ तस्मात्तत्र मुहुर्गर्लाना च गर्भिणी । अत्ययं चाप्नुते तस्मान्न मासो गण्यतेष्टमः ॥

गर्भवक्रान्ति शारीर –

- अवयव उत्पत्ति – 1) शोणित से – हुदय उत्पत्ति
 2) हुदय से – यकृत उत्पत्ति
 3) यकृत से – प्लीहा उत्पत्ति
 4) प्लीहा – फुफुस उत्पत्ति

गर्भाशय – उपरोक्त अवयव जरायु से युक्त तथा कुण्डलिनी चक्र में स्थित स्त्रोत = गर्भाशय

- जरायुणाम परिवीतं स गर्भाशय उच्यते ।
- स्त्रीणां गर्भाशयो अष्टमः ।

शारीरविचय शारीर -

अस्थी संख्या – 360

दशप्राणायतन – मूर्धा, हुदय, बस्ती, कंठ, ओज, शुत्र, शोणित, उभय शंख, गुद

कोष्ठांग – 13 1) यकृत 2) प्लीहा 3) क्लोम 4) हुदय

5) नाभी 6) उभय वृक्क 7) गुद 8) बस्ती

9) क्षुद्रान्त्र 10) स्थूलान्त्र 11) आमाशय 12) पक्वाशय 13) वपा

प्रत्यंग – 87 (चरक = 56)

स्त्रोतस – प्रमुख – 2 1) सूक्ष्म 2) महान

1) महत – 9 सप्त शिरसि अधः द्वे

2) सूक्ष्म – नाभी रोमकूप

आशय मे – कृमि आशय अलग माना है।

हुदय से – 10 माताए (मुख्य सिराए) निकलती है। उर्ध्वग – 4 अधोग – 4 तिर्यक – 2

देह स्वरूप -

अस्थीनि स्नायुबधानि स्नायवो मांसलेपनाः।

सिरभिः पुष्पते नित्यं तस्य सर्वं त्वचा ततम् ॥

बाह्य व अन्तः कूप – शत सहस्र (दो लाख) होते हैं। स्त्रीयो मे चतुर्थांश कम होते हैं।

अंजली प्रमाण – मज्जा मेद वसा आदी प्रमाण चरकसमान

उदक प्रमाण – 10 अंजली

उद्गेज प्रमाण = कफसमान = 6 अंजली (इलेष्मणस्तु प्रमाणेन प्रमाणं तुल्यमोजसः)

शुक्र – अर्धा अंजली मस्तिष्क – अर्धा अंजली

पुरुष मे शुक्र संपूर्णता – शुक्रं तु षोडशे वर्षे संपूर्णं संप्रवर्तते।

जातिसूत्रीय अध्याय -

संतानप्राप्त्यर्थं शोधनं पश्चात पुरुषो मे – मधुर औषधी सिध्द क्षीर व धृत सेवन

स्त्रीयो मे – तेल माष सेवन

16 वर्ष की आयु मे शुक्र व शोणित कार्य करने मे समर्थ होते हैं।

1) रजस्वला मे रजोदर्शन के प्रथम दिन सहवास से गर्भ रहने से – वातगर्भ = फलशून्य

2) द्वितीय दिन गर्भ रहने से – गर्भपात होता है

3) तृतीय दिन सहवास से गर्भ रहने से – सूतिकागार मे मृत्यु और अगर जीवित रहता है तो दीर्घायु नही होता है या हीनांग होता है।

पुत्र प्राप्त्यर्थ युग्म दिन मे सहवास व पुत्रीप्राप्त्यर्थ अयुग्म दिन मे सहवास

वर्णनुसार ऋतुकाल -

1) ब्राह्मण स्त्री – 12 दिन

2) क्षत्रिय स्त्री – 11 दिन

3) वैश्य स्त्री – 10 दिन

4) इतर (क्षुद्रादी) – 9 दिन

प्रसव समये योनीस्त्राव से लिंग अनुमान –

- 1) तन्त्रीवर्ण अल्प पिच्छील स्त्राव – पुत्रजन्म
- 2) किंशुकोदकसंकाश स्त्राव – पुत्रीजन्म

प्रसव काल समये – व्यायाम निषेध

आवी शब्द के लिए ग्राही शब्द प्रयोग

प्रसव काल समये गर्भिणी क्लान्त व तषार्थ होने पर – यवागु पान

इन्द्रियस्थान –

औषधभेषजेन्द्रियाध्याय –

चिकित्सा प्रकार – 2 1) औषध 2) भेषज

- 1) औषध – औषधं द्रव्यसंयोगं ब्रुवते दीपनादिकम् । दीपनादी द्रव्यो के संयोग से जो की जाती है ।
- 2) भेषज – हुतव्रततपोदानं शान्तिकर्म च भेषजम् । होम, व्रत, तप, शान्ति कर्म आदी को भेषज कहते हैं ।

एक मास में मारक अरिष्ट –

यस्य गोमयचूर्णाभं चूर्णं मूर्धनि जायते । सस्नेते भ्रश्यते चैव मासान्तं तस्य जीवितम् ॥

अर्धमास में मारक अरिष्ट –

कुक्षिः स्नातानुलिप्तस्य पूर्वं यस्य विशुष्यति । आर्द्धेषु सर्वगात्रेषु मासार्थं तस्य जीवितम् ॥

जिस पुरुष के स्नान तथा अनुलेपन के बाद अन्य अंगों के गिला रहते हुए सबसे पूर्व कुक्षि सूख जाती है उसकी आयु 15 दिन कीही होती है । चरक - कुक्षि के स्थान पर उर; सुश्रुत - हुदय

ग्रह द्वारा आक्रान्त बालक लक्षण –

- 1) स्कन्दग्रह – 1) जब माता या शिशु स्वप्न में गन्ध्युक्त पदार्थ या रक्तवस्त्र / रक्तपुष्प धारण करते हैं ।
2) बालक स्वप्न में मयुर, कुकुट, बस्त , मेष, पर अधिरोहण करता है
3) बालक रक्तार्चित (रक्त चंदन द्वारा अर्चित) होता है ।
4) बालक स्वप्न में घण्टा या पताका को भूमी पर विध्वस्त हुआ देखे, शयन को शोणिताक देखे

2) स्कन्दापस्मार –

1) माता स्वप्न में रक्तपुष्प तथा रक्तवस्त्र धारण करे, शरीर पर रक्तचंदन का लेप कर भूतो सह नृत्य करे,

3) स्कन्दपितृ –

धात्री पद्मबन में पद्ममालाओं द्वारा अपनी अथवा बालक की अर्चन करे तो स्कन्दपितृ का भय

4) पुण्डरीक –

धात्री स्वप्न में रक्तपुष्प वन में अथवा अग्नि में प्रवेश कर तथा उसका शिशु अग्नि में जलाया जाय

5) रेवती –

स्वप्न में बालक समुद्र आदी में अथवा अन्य जल में निमग्न (डूब) जाय

6) शुष्क रेवती –

यदि स्वप्न में शुष्क कुप नदी का दर्शन हो तो शुष्क रेवती का भय

7) शकुनी –

स्वप्न में मांसभक्षी पक्षी का दर्शन हो तो शकुनि ग्रह द्वारा आक्रान्त समझे

8) मुखमंडिका –

स्वप्न में अवडीन (पक्षी) द्वारा दष्ट हो तो शीघ्र मृत्यु को प्राप्त होता है

स्वप्न मे हरिताल आदी रंग से यदि आकाश मे पीत रंग देखता हुआ मांस का सेवन करता है, अलंकारो को धारण करता है

9) पूतना –

यदि स्वप्न मे नक्षत्र ग्रह चंद्र अर्क तारका अक्षि कनिनिका के नीचे गिरी हुए देखता है

स्वप्न प्रकार – 10

- 1) प्रार्थित
- 2) कल्पित
- 3) दृष्ट
- 4) अनुभूत
- 5) श्रुत
- 6) भावित
- 7) हस्त
- 8) दीर्घ
- 9) दिवास्वप्न
- 10) दोषज

उपरोक्त सर्व स्वप्न = अफल

फलवान स्वप्न –

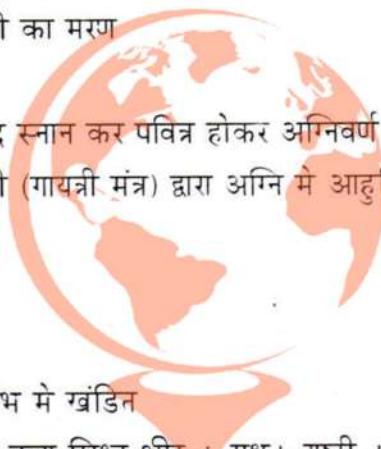
- 1) अदृष्ट
- 2) अश्रुत
- 3) अनुक
- 4) अकल्पित
- 5) अभाषित
- 6) कार्यमात्र

उपरोक्त स्वप्न जीर्णान्ते (पूर्ण होने के बाद) फलवाले होते हैं।

दुष्ट स्वप्न देखने से रोगी का मरण

अशुभ स्वप्न परिहार –

दुष्ट स्वप्न देखने के बाद स्नान कर पवित्र होकर अग्निवर्ण सर्षप व धृत की अग्नि मे आहुति दे धृत मुक्त तील से सावित्री (गायत्री मंत्र) द्वारा अग्नि मे आहुति दे



षष्ठि स्थान – चिकित्सास्थान

1) ज्वरचिकित्सा – खंडित अध्याय

2) गर्भिणी चिकित्सा – अध्याय प्रारंभ मे खंडित

परिकर्तिका चिकित्सा – मधुर द्रव्य सिध्द क्षीर + मधु+ यष्टी + मधुक+ फाणित = लेहन स्वरूप सेवन
कामला चिकित्सा – पिप्ली व अंकोट मूल वाजील (अश्व) अण्ड रस सह माहीष दथी सह सेवन

हुदयरोग – मातुलुंग रस+ मैथव

पिण्लीमूल कल्क गंधप्रियंगु मातुलुंग रससह सेवन

प्रियंगु, भद्रमुस्त, हरेणु, बदरचूर्ण क्षोड्र सह सेवन

3) दुष्प्रजाता चिकित्सा –

कृच्छता से प्रजाता होनेवाली स्त्री मे स्नेहन स्वेदन से बातशमन पश्चात दीपनीय यवागू पान दुष्प्रजाता स्त्री के रोगो का शमन त्रैवृत योग से शमन करे।

पश्चात अध्याय खंडित

4) बालग्रह चिकित्सा अध्याय –

अध्याय प्रारंभ मे खंडित

रेवती ग्रह – 20 नाम

1) वारूणी 2) रेवती 3) ब्राह्मी 4) कुमारी 5) बहुपुत्रिका 6) शुष्का 7) षष्ठी 8) यमिका

9) धरणी 10) मुखमंडिका 11) माता 12) शीतवती 13) कण्डु 14) पूतना 15) निरूणिका

16) रोदनी 17) भूतमाता 18) लोकमातामहि 19) शरण्या 20) पुण्यकिर्ति

उपरोक्त रेवती की पूजा जप करेंगे उनको ग्रहबाधा भय नहीं रहता व सन्तान रोगरहीत होती है।

रेवती वर्णन – षण्मुखी (छ मुहवाली), नित्यललिता, वरदा, कामरूपिनी,

रेवती का पूजा दिन = षष्ठी

रेवती (षष्ठी) स्कन्द की भगिनी मानी जाती है।

षष्ठी पूजन –

तस्माच्च सूतिका षष्ठी पक्ष षष्ठी च पूजयेत् । उद्दिश्य षण्मुखी षष्ठी तथा लोकेषु नन्दति ॥

पूतना नाम – मलजा, क्रौंची, वैश्वदेवी, पावनी, पूतना

अन्धपूतना चिकित्सा – अक्षिरोगचिकित्साभिः शमयेद् अन्धपूतनाम् ।

शीतपूतना चिकित्सा – शीतङ्गारचिकित्साभिः शमयेत् शीतपूतनाम् । (शीतचिकित्सा)

पंचकोल व लघु पंचमूल सिद्ध घृत सेवन

मुखर्चिका (मुखमण्डिका) चिकित्सा – कपित्थ बिल्व तर्कारी बिम्बी गंधर्वहस्त सिद्ध तैल का शिशु की आखो में अंजन करे ।

ततपश्चात् अध्याय खण्डित

5) प्लीहहलीमक चिकित्साध्याय –

प्रारंभिक अध्याय खण्डित

हलीमक लक्षण – बल व अग्नीक्षय, मूर्छा, भ्रम, तृष्णा, तन्द्रा, विषाद, अरुचि, गौरव.

चिकित्सा – वातपित्तधन चिकित्सा

1) वातप्रधान हलीमक – कल्याणकारक बला तैल, व कुमारकल्याणक घृत प्रयोग. अगस्त्यहरीनकी प्रयोग कामला, पाण्डु, शोथ समान चिकित्सा

2) पित्तप्रधान हलीमक – गुडूची स्वरस सिद्ध माहिष घृत सेवन, पश्चात् त्रिवृत् चूर्ण से विरेचन. ततपश्चात् सदा अविदाही व मधुर पदार्थ सेवन, दुर्बल रूग्ण में नित्य गुड हरीतकी सेवन

6) उदावर्त चिकित्सा अध्याय :-

षड उदावर्त – वातविष्मूत्रशुक्रच्छर्दिक्षबथु

चिकित्सा – उष्ण लवण तैलाभ्यंग फलवर्ती . नाशचक चूर्ण प्रयोग

7) राजयक्षमा चिकित्सा अध्याय –

20 पिप्पली जल में पक्व कर = चतुर्थांश शोष – पुनः अजाक्षीर में पाक = नित्य पान

12 वर्ष पुराणा राजयक्षमा में स्नेहन स्वेदन पश्चात् क्षीरसह पिप्पली सेवन

प्रतिदिन 5 पिप्पली वर्धमान व ततपश्चात् पुन हास कर = एकुण 100 पिप्पली प्रयोग

पिप्पली वर्धमानं तु सर्वरोगविनाशनम् ।

पिप्पली वर्धमानं तु वातश्लेष्मतर्रे हितम् ।

सर्वत्रपिप्पलीक्षीरं हितं कालादिदर्शनात् ॥

नागबला रसायन – संग्रहण – शरद ऋतु में

वर्धमान स्वरूप मे प्रथम दिन 1 कर्ष ततपश्चात् प्रतिदिन 1 पल विवर्धमान मात्रा

एकुण काल – 1 मास

फलश्रुती – प्रजामायुर्बल मेधा वर्धक, षण्मासेन श्रुतधर सर्वरोगविवर्जित

अजा प्रयोग – 1) अजापुरीष से उद्वर्तन 2) अजामूत्र से परीषेक

3) अजाक्षीर सेवन 4) अजाओ म निवास (वसन)

महाभयारिष्ट सेवन . इन्द्राणी घृत सेवन (लशुन घटक), द्राक्षा घृत व पीलु घृत सेवन

8) गुल्म चिकित्सा –

संख्या सफापी व स्थान – चरकानुसार 5

हेतु – चेष्टा व अन्नपान से प्रकृष्टि दोष आमाशय का अधिष्ठान कर गुल्म उत्पत्ति करते हैं।

निदान व संप्राप्ती –

दुष्प्रजाता आमगर्भा च गर्भस्त्रुबहुमैथुना । अन्वक्षगर्भकामा च बहुशीतार्तवा च या ॥ (शीघ्रता से गर्भधारण)

उदावर्तनशीला च जातलान्ननिषेजणी । या स्त्री तस्या: प्रकृष्टितो वातो योनि प्रपद्यते ॥

निरूध्यार्तवं तत्र मासिकं संचिनोति । रक्ते च संस्थिते नारे गर्भिण्यास्मीति मन्यते ॥

लक्षण –

स्तनमंडलकृष्णात्वं रोमराजि: सदोहदा । गर्भिणी रूपं अव्यक्तं भजते सर्वमेव तु ।

विपाकपाण्डुकार्यानि भवन्त्यभ्यकानि तु । इत्येवं लक्षणं स्त्रीणां रक्तगुल्मं प्रचक्षते ॥

स्वरूप –

अनेकदोषसंघातो गुल्मवट् गुल्म उच्यते । निदोषजादृते गुल्माः सिध्यन्ति न चिरोत्थितः ॥

चिकित्सा –

1) गुल्मिनं प्रथमं वैद्यं स्नेहस्वदोपपादितम् । यथास्वटोपशमनैरौषधैः समुपक्रमेत् ॥

2) बृहणं चातिगुल्मेषु भृशं चातिविरूक्षणम् । अतिसंशोधनं चैव गुल्मिनं न प्रशस्यते ॥

वातज गुल्म चिकित्सा –

1) आभ्यन्तर रेवनार्थ घृत – दशांग घृत, षटपल घृत, शैशुक घृत (शिशु सर्पि)

2) ततपश्चात एरंड तैल से मृदू रेचन

3) स्नेहन से वातगुल्म शांत न होनेपर आस्थापन या अनुवासन तथा क्षीरानुपान से गुड हरीतकी सेवन
शेष अध्याय खंडित

9) कुष्ठ चिकित्सा –

प्रारंभिक अध्याय खंडित

कुष्ठ संख्या = 18 साध्य – 9 असाध्य – 9

सर्वं तु कुष्ठं त्वकमांसरूधिरलसिकाश्रयं स्पर्शान्वं चेति । वर्धमानं तु वैरूप्यकरं भवति ।

लक्षण वर्णन चरकसमान

चिकित्सा --

कुष्ठेषु आदौ वातोत्तरेषु घृताच्छ पानमनेकशो मण्डान्तरितं प्रशस्यते, तिक्तसर्पिष इतरोत्तरयोः,

वमनविरेचन आस्थापन शेष अध्याय खंडित

वातज कुष्ठ मे मण्ड से रहित अच्छ घृत पान, इतर (पित्तज व कफज) मे तिक्तक घृत पान व वमन विरेचन

10) मूत्रकृच्छ्रचिकित्सा –

प्रकार – 8

मूत्रकृच्छ्र व प्रमेह भेद – प्रमेह चिरात कुपित होता है, मूत्रकृच्छ्र सद्य प्रकृष्टि होता है ।

मूत्रकृच्छ्र मे पित्तप्राधान्य होता है व वायु के स्थान इसके आश्रय होए हैं ।

चिकित्सा – मूत्रकृच्छ्र मे मधुर द्रव्य, क्षीरविकृती, त्रपुस घृत पय देय है, संग्राही व विदाही द्रव्य वर्ज्य है ।

रोगी के पुष्ट होने से अश्मरी भी पुष्ट होती है, इस अवस्था मे अश्मरी उद्धरण निषेध. इस अवस्था मे तीक्ष्ण औषधी से इरण करे, अतिबालक मे भी अश्मरी उद्धरण का निषेध

11) द्वितीय अध्याय –

व्रण प्रकार – 2 1) निज 2) आगंतुज

व्रण उपक्रम – तेषां उपक्रमं धात्रीबालनिग्रहौ, संशमनं, बन्धनम्, उत्किलनप्रक्षालन (उत्किलन मांस प्रक्षालन)
कल्कप्रणिधान, शोधन, रोपण, सर्वर्णकरण.

अथ खलु बालानां अष्टौ पिडका: स्वशरीरदोषात् स्वदोषाच्चोत्पद्यन्ते । (प्रमेह पिडका वत)

- 1) शारविका, जालिनी, कच्छपिका – कफप्राया
- 2) सर्षपिका, अलजी, विद्रुधि – पित्ताधिका
- 3) विनता – वाताधिका
- 4) अरुंषिका – सर्वदोषजा

अरिकिलिका – (अरशलाकाकार कील)

हेतु – बालक शरीर पर पक्व इष्टिका चूर्ण लगता है, त्रपुस वा एर्वारू बीज सेवन से अंगशुष्कता
मेदोवर्धक अन्न सेवन, दिवास्वाप,

संप्राप्ती – प्रकृपित वात त्वक स्थाने जाकर त्वचा मेद से परिणूर्ण हो जाती है ।

स्वरूप – लवकर्तन समान, कर्कन्थु वा गोस्तन समान

चिकित्सा – सर्वप्रथम स्नेह वा गुड से दहन, एकेक कर छेदन कर क्षार प्रतिसारण, क्षारसूत्र से बंधन
व पश्चात व्रणकर्म

12) प्रतिश्याय चिकित्सा –

: प्रकार – 4 1) वातज 2) पित्तज 3) कफज 4) सान्त्रिपातज

वातश्लेष्मोत्तरः प्रायः प्रतिश्यायः त्रिदोषजः । बलान्विर्वणशमनो निहन्ता चाषुपेक्षितः ॥

प्रतिश्याय से दिवाकरावर्त (सूर्यावर्त) उत्पन्नी

चिकित्सा – प्रथमतः उपवास अथवा पंचमूल का दीपनीय क्वाथ, गुडहरीतकी सेवन

निशी जीर्णान्न पश्चात संपिणान, इसमे शमन न होने पर पुराण सार्पि, पंचगव्य सर्पि, षट्पल, कल्याणक
सर्पि पान, नित्य मुख मे मरिच धारण, वर्धमान पिप्पली सेवन, अभया गुड सेवन

13) उरोधात चिकित्सा –

प्रकार – 4

लक्षण – शीतज्वर, प्रतिश्याय, शुकैरिवावृत कण्ठ, कास व मन्दक रोग

पित्तश्लेष्मोत्तर उरोधात प्रायः त्रिदोषज होता है ; तस्मात पित्तकफध्न चिकित्सा निर्देश

14) शोफ चिकित्सा –

प्रकार – 4 अध्याय खण्डित

15) कृमिचिकित्सा –

विडंग घृत प्रयोग

तिकोष्णकटूरुक्षक्षाणां मूत्राणां लवणस्य च । स्नेहस्वेदोपसेवा च पथ्यं च कृमीनाशने ॥

स्थानिक उपचार – नातिष्ण कटूतैल (सर्षप तैल) सैंधव सह गुद मे लगाकर स्वेदन करे ।

इतर अध्याय खंडित

16) मदात्यय चिकित्सा –

मद्यपृत्तज रोग – त्रिविधि , 1) पानात्यय 2) विभ्रम (पानविभ्रम) 3) पानापक्रम

- 1) पानात्यय – प्रथम मद्यपान के पश्चात उसके पूर्ण जीर्ण होने से पहले पुनः मद्यपान
- 2) पानविभ्रम हेतु – विभ्रान्त मद्य के सेवन से (मद्य के कारण चित्तवृत्ति के अस्थिरता को पानविभ्रम कहते हैं)
- 3) पानापक्रम – मद्य का सहसा विच्छेद (मद्य न मिलने से)

मद्य सेवन योग्य अवस्था --

स्तन्यक्षय, वातज शूल, शीतक ज्वर, विषमज्वर, नारीयो व सुकुमारो के अनेक रोगों में, सूतिका एवं दुष्प्रजाता योनिभ्रंश, अतिमैथुन, दंतजन्मसमये, पिपासा पिडीत, तालुकण्ठ ओष्ठ शोष, रोदिते, प्रजागरे, वातश्लेष्मातकरोग

मदात्यय दोषाधिक्य –

मदात्ययं वातकरं कृच्छसाध्यं करोति वा ।

प्रकार – 4 वातज, पित्तज, कफज, सान्त्रिपातज

चिकित्सा – भूयिष्ठं आमप्रभवं प्रवदन्ति मदात्ययाम् । तस्मान् मदात्यये पूर्वं हितं लंघनमेव तु ॥

17) फक्क चिकित्सा –

लक्षण – बालः संवत्सरा पादाभ्यां यो न गच्छति । स फक्क इति विज्ञेय । काश्यप

प्रकार – 3

- 1) क्षीरज 2) गर्भज 3) व्याधीज

1) **क्षीरज** – धात्री इलैमिकदुग्धा तु फक्क दुर्घेति संज्ञितः ।

तत्क्षीरपो बहुव्याधीः काश्यात् फक्कत्वमानुयात् ॥ का > चि. /4

धात्री के कफदुष्ट दुग्ध सेवन से बालक अनेक व्याधी पिडीत व कृश होता है उसे क्षीरज फक्क कहते हैं

2) **गर्भज फक्क** – गर्भिणी मातृकः क्षिप्रं स्तन्यस्य विनिवर्तनात् ।

क्षीयते प्रियते वाऽपि स फक्को गर्भिणिः ॥

जिस बालक की माता गर्भिणी हो उसके क्षीर का विनिवर्तन (क्षय) हो जाता है ; अतः बालक को

स्तन्य अभावसे बालक क्षीण हो जाता है वा मृत हो जाता है ।

3) **व्याधीसम्भवज फक्क** – निज वा आगंतु व्याधी से उत्पन्न

लक्षण – अनाथः क्लिश्यते बालः क्षीणमांसबलद्युतिः ।

संशुष्क स्फिचबाहुः महा उदर शिरोमुखः । पीताक्षो हुषितांगश्च दृश्यमान अस्थीपंजरः ॥

प्रम्लानाधरकायश्च नित्यमूत्रपुरीषकृत् । निशेष्याधरकायश्च वा पाणिजानुगमोऽपि वा ॥

दौर्बल्यान्मन्दश्वेष्टश्च मन्दत्वात् परिभूतकः । माक्षिकाकृमीकीटानां गम्यश्वासन्मृत्युरूक् ॥

विशीर्णहुष्टरोमा च स्तब्धरोमा महानखः । दुर्गन्धे मलिनः क्रोधी फक्क श्वसिति ताम्यति ॥

अतिविट मूत्रदूषिकाशिण्डाणकमलोद्धवः । इत्येतैः कारणैर्विद्यात व्याधीजां फक्ककंतां शिशोः ॥ का. चि

1) अनाथ बालक का मांस तेज बल क्षीण हो जाता है

2) स्फिक बाहु शुष्कता, उदर शिर मुख बड़े हो जाते हैं, पीत अक्षी, अंग हर्षयुक्त, शरीर अस्थीपंजरयुक्त

3) अधरकाय म्लान, पुरीष व मूत्र सदा निकलता है, अधरकाय निशेष्ट होने से हस्त व जानु से चलता है

4) दुर्बलता के कारण चेष्टा मंदता, उससे माक्षिका कीट कृमी आक्रान्त कर शीघ्रमृत्यु देनेवाले रोग उत्पन्न

5) उसके रोम नख विशीर्ण स्तब्ध व हुष्ट होते हैं, नख बड़े होते हैं, दग्धन्ध मलिन होता है, श्वास लगता है

6) मल मूत्र की अधिकता होती है, दूषित सिंघाण मल (नासिका मल) एवं इतर मल आदी लक्षण होते हैं

चिकित्सा -

कफाधिक्य होने पर गोमूत्र + क्षीरपान

वाताधिक्य होनेपर बस्ती, स्नेहन, स्वेदन

स्नेहनार्थ - कल्याणक घृत, षटपल घृत, अमृत घृत

सप्तरात्र पश्चात त्रिवृत क्षीर से शोधन

शोधन पश्चात ब्राह्मी घृत सेवन

राजतैल प्रयोग – वंध्यत्व, पंगुत्व नाशन भी होता है।

त्रिचक्र फक्क रथ प्रयोग

इतर वर्णन -

पित्तानिलप्रकृतिकी पटुक्षीरा पटुप्रजा। कृतः पङ्गुजडा मूका त्रिदोषक्षीरभोजिनः ॥

1) पित्तवातप्रकृति स्त्री

2) पटुक्षीरा (लवणरसयुक्त क्षीरवाली स्त्री)

3) पटुप्रजा – जिसके अधिक संतान हों।

4) या त्रिदोषज क्षीरसेवन से

बालक मे पंगु जडता मूकता उत्पन्न होती है।

वागोन्द्रिय के दो भाग – 1) शब्द ग्रहणार्थ 2). शब्द वदनार्थ

तस्माच्य मूका भूयिष्ठं भवति बधिग नराः। वाग्मूलं हि स्मृतं श्रोत्रं वाग्भ्रंशो भ्रश्यते हि तत् ॥

18) धात्री चिकित्साध्याय -

सुखं दुःखं हि बालानां धात्रीमूलमसंशयम् ।

अग्नि चिकित्सा -

1) तीक्ष्णाग्नि पुरुष – बृंहण

2) मन्दाग्नि – दीपनी क्रिया

3) विषमाग्नि – पथ्याकान – कल्याणक तथा षटपल घृत प्रयोग

धात्री मे अग्नि वर्धनार्थ – क्षार प्रयोग निषेध

मेदस्वीनीनां धात्रीणां सिराकर्म प्रशस्यते ।

कृश व नष्टपुष्या धात्री – बृंहण, बृंहणार्थ बला तैल प्रशस्त

बलातैल उपयोग – शाखागत कोष्ठगत अस्थीमज्जागत वात, योनिदोष, रेतोदोष, ग्रहरोग, जीर्णज्वर, दुष्प्रजाता

योनिशूल, इतर वातरोग

योनि नासा मुख श्रोत्र दोर्गम्य – कपित्थ तैल पिचु धारण

बालक मे उत्पन्न षष्ठी रोग –

प्रसूत सी मे स्नेहपान, षष्ठी व मल्लक (मस्त्यविशेष) भक्षण से, अतिमात्राशन

विरुद्ध भोजन, अजीर्ण भोजन से बालको मे षष्ठी नामक रोग उत्पन्न होता है।

असाध्य व अनुषंगी (बहुत दिन ता रहने वाला) है।

- मिताहारी, धर्मशील, तपस्विनी, जीर्णशीनी, धात्री षष्ठी रोग से मुक्त होती है।

अजीर्ण चापि धात्रीणां नित्यमेव न शस्यते ।

धात्री को कभी भी अजीर्ण नहीं होना चाहिए ।

लोक म तीन लोग दुष्कर कार्य करनेवाले होते हैं – (दुष्कारिणः)

- 1) भिषक 2) धात्री 3) बालक

सप्तम – सिद्धिस्थान

प्रथम अध्याय – राजपुत्रीय सिद्धिर्नाम प्रथमो अध्याय (बस्तीकर्म संबंधी वर्णन)

शिशुनां अशिशुनां च बस्तिकर्म अमृतं यथा ।

बस्तीदान संदर्भ मे मत मतांतर –

- 1) गार्य – बालक को जन्म सेही बस्ती दी जा सकती है ।
- 2) माठर – एक मास के बाद बस्ती देनी चहिए ।
- 3) आत्रेय – चार मास की अवस्था मे बस्ती देनी चहिए ।
- 4) पाराशर – तीन वर्ष बाद बस्ती देनी चहिए ।

5) काश्यप – अधस्तनोऽन्नभोक्ता च चयदावा । (अधस्तनो व अन्नभोक्ता)

बालक गोद की अवस्था व्यतीत की हो व उसने अन्न खाना प्रारंभ किया हो उसे बस्ती देनी चहिए ।

बस्ती नेत्र स्वरूप – श्लक्षण, गुलिकामुख, गोपुच्छाकार

बस्ती गुणकर्म –

वर्णते जो बलकर मायुर्णं शुक्रवर्धनम् । योनिप्रसादनं धन्यं वन्ध्यानामपि पुत्रदम् ॥

बस्तीकर्म (कृतं) काले बालानममृतोपमम् ॥

2) त्रिलक्षणा सिद्धिर्नाम द्वितीयोऽध्यायः

त्रिलक्षणा सिद्धी – 1) दुर्योग (अयोग) 2) अतियोग 3) सम्यक्योग

नस्य प्रकार – 2

- 1) बृहण – वातप्रधान रोगो मे
- 2) कर्षण – कफप्रधान रोगो मे

शिरोविरेचन अतियोग – उन्माद, वातपित्तप्रकोप, हुद्वाव, सूर्यावर्त.

3) वमन विरेचनीयसिद्धीर्नामतृतीय अध्याय –

वमन शुद्धीनुसार वेग संख्या –

- 1) कनीय शुद्धी – 2 – 3 वेग
- 2) मध्यम शुद्धी – 4 – 5 वेग
- 3) उत्तम शुद्धी – 6 – 7 वेग

अत्यन्त छोटे बालक मे वमन करानेपर – हुल्लास ज्वर अरुचि आदी उपद्रव उत्पन्न होते हैं ।

अतः 6 वर्ष की अवस्था के बाद वमन करना चहिए ।

वमनार्थ मात्रा – विडंगमात्र / बदरास्थीमात्र / बदरमात्र / आमलक मात्र

वमन वा विरेचनार्थ औषध शर्करासह देना चहिए ।

वमन औषध – पल / अध्यर्धपल (1 1/2) / द्वी / त्री पल

बालक मे विरेचन –

- 1) हीनवेग – 2 वेग एक प्रस्थ दोष निर्हरण
- 2) मध्यवेग – 3 वेग दो प्रस्थ दोष निर्हरण
- 3) उत्कृष्ट वेग – 4 वेग तीन प्रस्थ दोष निर्हरण

शोधन मे श्रेष्ठता –

पितान्त वमनं कुर्यात् कफान्तं च विरेचनम् ।

बालक मे स्वेद –

हस्तस्वेदं च शुलेषु बालकानां विधापयेत् ।

षडवर्षप्रभृतीनां तु पटस्वेदः प्रशस्यते ॥

बालकों मे शोधन काल मे शूल होनेपर – हस्तस्वेद

6 वर्ष से अधिक वय बालक – पटस्वेद

शोधन अतियोग –

वमनं च विरेकाय, विरेको वमनाय । यदा भवति तं प्राहुरतियोगविपर्ययम् ॥

वमन करते हुए विरेचन हो जाय तथा विरेचन करते हुए वमन हो जाय उसे अतियोग कहते हैं ।

संपूर्ण वातरोग शमनार्थ – गंधर्व तैल अनुवासन या गंधर्व कषाय सिद्ध अनुवासन हितकर है ।

4) नस्तःकर्माय सिद्धिर्नाम चतुर्थो अध्याय

नस्य प्रकार – 2

1) शोधन 2) पूरण (बृंहण)

नस्य के अधिक सेवन से उत्पन्न उपद्रव मे – कुमार तै वा पुराण घृत प्रयोग

स्तनपान करनेवाले बालो मे नस्यार्थ कटुतैल वा सौंधव युक्त घृत का प्रयोग करे ।

5) क्रियासिद्धिर्नाम पञ्चमो अध्याय –

पंचकर्म समये निषेध –

अजीर्ण मैथुनं यानमुच्चैर्भाष्यं दिवाश्रायम् । अतिचंक्रमणस्थानमसत्यादि च वर्जयेत् ॥

उपरोक्त क्रियाओ के परिणाम –

अजीर्ण वधते व्याधिः पुनः काश्यं च जायते । क्रियायां मैथुनात् षाण्ड्यं पाण्डुत्वं च निगच्छति ॥

बस्तीनेत्रदोष – 6

1) अतिदीर्घ 2) अतिस्थूल 3) जरंर 4) स्फुटित 5) तनु 6) कुटिल

बस्तिदोष – 9

1) अतिहस्त 2) खर 3) स्थूल 4) तनु 5) दीर्घ 6) चीरस्थिता 7) छिट्री 8) महान 9) उपहत

बस्तिप्रणेतु दोष- 10

1) अप्राप्त 2) अतिनीत 3) विन्यस्त (विपरीत स्थिती मे बस्ती) 4) अतिपीडीतम 5) स्त्रुत

6) विलग्न (अंतर्भाग मे ही रहना) 7) शिथील 8) रुध्दवात 9) चीर 10) अचीर

बालक गुदोद्धवज रोग (बस्ती व्यापद कारण) चिकित्सा –

क्षीरं यवान्न शाकानि जंगलानि आमिषाणि च । भोजयेत् स्नेहयुक्तानि गुदरोगोद्धवे शिशुम् ॥

6) बस्तिकर्माय सिद्धिर्नाम अष्टमो अध्याय –

बस्ती अयोग, अतियोग लक्षण व चिकित्सा

आनाह व शूल होनेपर – फलवर्ती द्वारा स्त्रंसन फलवर्ती स्वरूप – यवसमान

7) पञ्चकर्मायसिद्धिर्नाम सप्तमो अध्याय –

वमन अयोग्य – पुष्पिनी, ऋतुमती, गर्भिणी, कुटिगता (कुटि मे स्थित), अल्पक्षीरा, लघुक्षीरा, नष्टक्षीरा, छीरच्छर्दनपुत्रा (जिसका पुत्र वमन करता हो), प्रच्छर्दिनी, सुभगा, पण्डितमानिनी (स्वतः को

पण्डित समझने वाली), जाठरे, वातज्वरी, स्थूल, अक्षीरोगी, लोमव्यापत, कम्प, अर्दित अर्धावभेदक, सूर्यावर्त, रेवती पौण्डरीक शकुनी पूतना मुखमण्डिका आदी ग्रह पिण्डीत विरेचन योग्य – अगर्भा, गर्भकामा, विवर्णक्षीरा, स्त्रवक्ष्त्रा (जिसका क्षीर निरन्तर निकलता हो), मन्दाग्नि, विसर्प, शोणितार्श, विषमाग्नि, श्वयथु, कुष्ठ, श्वित्र, प्लीह, गुल्म, मधुमेह, हलीमक, कामला, पाण्डु, कृमीकोष्ठ, अपसमार, अपस्तंभ, उदावर्त, कफोन्माद, विद्रधी, इलीपट.

विरेचन अयोग्य – अनुपस्निग्ध, रिक्तकोष्ठ, कृश, स्थूल, ललित (जिसका अच्छी प्रकार से पालन पोषण किया हो) सुकुमार, श्रीधन नष्ट (श्री – कान्ती), वातज हुद्रोग, रेवती, केवल वातार्त

निरूह मे स्नेह प्रमाण –

स्नेहप्रमाणं यद् बस्तौ निरूहस्त्रिगुणस्तः ।

बस्ती मे जितना स्नेह डाला जाता है उससे त्रिगुण स्नेह निरूह मे डाला जाता है ।

8) मङ्गलसिद्धिनाम अष्टमो अध्याय

बालक को आम अथवा पक्व स्नेह बस्ती तथा नित्य अनुवासन बस्ती देनी चाहिए ।

बस्तीकर्मार्थ 'शैशुकस्नेह' –

शैशुको नाम स स्नेहो बस्तिकर्माणि शस्यते । बालानां सर्वरोगघ्नो निर्दिष्टः पुण्यकर्मणः ॥

सवदोषहर निरूह – कतृणदि द्रव्य सिध



कल्पस्थान –

1) धूपकल्पाध्याय

अपस्मार व ग्रहरोगधन धूप – धृत, सर्पनिर्माक, गृध्र व कौशेयक विट, वचा, हिंगु

ग्रहरोगधन धूप – धृत, बिल्व, देवदारु, गुगुल, यव – इसको माहेश्वर धूप; कहते हैं ।

रक्षोघ्न धूप – धृत, सिधार्थक, हिंगु, देवनिर्माल्य, अक्षत (तण्डुल), सर्पत्वक, भिक्षुसंघाटी (बौद्ध भिक्षु का प्राचीन वस्त्र)

दशांग धूप – धृत, सिधार्थक (श्वेत), कुष्ठ, भल्लातक, वचा, बस्तलोम, तगर, भूर्जावर्त, गुगुल.

दशांगो धूप नाम धूपोऽयं प्रयोज्यः सर्वरोगिषु । अपस्मारे विशेषेण ग्रहेषु उपग्रहेषु च ॥

कुमार धूप – बालक वर्धनार्थ

शिशुक धूप – धृत, जटामासी, तगर, स्थैणेयक, परिपेलव, हीबेर, हरताल, मनशिला इ.

सर्वग्रहापह, धूप, अनुधूप, प्रतिधूप रूप मे प्रयुक्त किया जाता है ।

इस अध्याय ए एकुण – 40 धूप का वर्णन

कर्म भेद से धूप प्रकार – 3

- 1) धूप
- 2) अनुधूप
- 3) प्रतिधूप

उत्पत्ती कारण से धूप प्रकार – 2

- 1) स्थावर
- 2) जांगम

धूप की देवता – अग्नि

धूप के आश्रय = 2 1) स्थावर 2) जांगम

2) लशुनकल्पाध्याय –

लशुन उत्पत्ति – अमृत बिंदु से

लशुन मे स्वादु, तिक्क, कटु रस ऋग्मः बलवान होते हैं।

स्वादु होने से गुरु तथा स्नेह युक्त होने से लशुन अत्यंत बृहण होता है।

लशुन के अंग नुसार रस

लशुन अंग	काश्यप	भावप्रकाश
बीज	कटु रस	मधुर
नाल	लवण व तिक्क	नालाग्र – लवण
पत्र	कषाय	तिक्क
कन्द (मूल)	----	कटुरस
पुष्पनाल	----	कषाय

लशुन गुणधर्म –

रससाधारणत्वाच्च साधारणरूजापहम् । आयुष्यं दीपनं वृष्यं धन्यमारोग्यमग्रिमम् ॥

स्मृतिमेधाबलवयोर्वर्णचक्षुः प्रसादनम् । मुखसौगन्ध्यजननं स्त्रोतसा च विशोधनम् ॥

शुक्रशोणितगर्भाणां जननं हीनिषेधयोः । सौकुमार्यकरं केश्य वयसः स्थापनं परम् ॥ लज्जा व निषेध का उत्पादक

अमृतोद्भूतममृतं लशुनानां रसायनम् । दन्तमांसनखश्मश्रुकेशवर्णयोबलम् ॥

न जादु भ्रश्यते जातं नृणां लशुनखादिनाम् । न पतन्ति स्तनाः स्त्रीणां नित्यं लशुनसेवनात् ॥

न रूपं भ्रश्यते चासां न प्रजा न बलायुषी ॥ सौभाग्यं वर्धते चासां दृढं भवति योवनम् ॥

लशुन सेवन से स्त्रीयो मे लाभ –

ग्राम्यधर्मज रोग (मैथुनजन्य) नहीं होते, कटी स्त्रोणी आदी अंगों के रोग नहीं होते वंधा न भवति, प्रियदर्शना भवति ।

पुरुषों मे लशुन सेवन से लाभ –

दृढमेधाविदीर्घायुर्दशनीयप्रजा भवेत् । अश्रान्तो ग्राम्यधर्मेषु शुक्रधाश्व भवेन्नरः ॥

लशुन प्रयोग योग्य व्याधी –

अस्थिच्युत, अस्थीभग्न, अस्थीरोग, वातरोग, पुष्परेतोरोग, कास, कुष्ठ, कृमी, गुल्म, किलास, कण्डू विस्फोटक, विवर्णता, तिमीर, श्वास, नक्तान्ध्य, अल्पभोजी, जीर्ण ज्वर, तृतीयक व चतुर्थक ज्वर, विदाह स्त्रोतस उपधात, गात्रजाद्य, उपशोष, अश्मरी, मूत्रकृच्छ, कुण्डल, भगन्द्र, प्रदर, प्लीहरोग, शोष, पंगुता वातरक,

लशुन प्रयोग अयोग्य –

श्लेष्मज व पित्तज व्याधी, हसिष्ठ (शरीर हास), स्थविर (वृद्धावस्था), अग्निमान्द्य, सूतिका, गर्भिणी, शिशु, आम, ज्वरातिसार, कामला, अर्श, उरुस्तंभ, विबंध, गलवक्त्ररूजा, सद्योवान्त, विरीक, कृतनस्य, विशोषीत, तृष्णा, छर्दि, हिकका, श्वास, अधृति, असहाय, दरिद्र, दुरात्मा, दत्तबस्ती निरूह.

लशुन सेवन काल – पौष व माघ मास

लशुन मात्रा –

हीन मात्रा – 4 पल

मध्यम मात्रा – 6 पल

उत्तम मात्रा – 8 या 10 पल

शुक एवं बद्धबीज लशुनों की गणीतों के अनुसार – श्रेष्ठ, मध्यम व निकृष्ट मात्रा अनुक्रमे 100, 60, 50

हरीत लशुन की मात्रा – पल के अनुसार अथवा उत्साह(रुचि) रहने तक या मूर्च्छा आने तक

लशुन सेवन विधि –

पत्र वर्ज करके बीज एवं नाल का उपयोग करे ।

सूक्ष्म छिन्न कर धृत मे प्लावीत कर सेवन करे ।

बालक को नवीन तैल या हैयंगवीन के साथ प्रयोग मे लाये ।

लशुन सेवन समये पथ्य – अत्मचिंतन पश्चात दिवास्वाप त्याग, द्रुतंधावन वर्ज्य । सदा उष्णोदक सेवन

हरीतक वर्ग मे मूलक छोड़कर सभी पदार्थ देने चाहिए ।

मध्य का युक्तीपूर्वक सेवन । लशुनान्तरा खादेत पिबेन्मद्यं तथाऽन्तरा ।

एकुण प्रयोग काल – पक्ष, मास, ऋतु या हेमंत के तीन मास

कुष्ठ, श्वास, तमक श्वास, प्रमेह, वातकुण्डल, प्लीहा, अर्श, गुल्म, इनको लशुन सेवन समये जलपान वर्ज्य यूष सेवन करे ।

लशुन सेवन के बाद अपथ्य –

विस्तुदानि विदाहिनी वर्ज्ययेत् शाक गोरसान् । अभिष्यन्दि च अन्नानि मांसं भक्ष्यैक्षवाणि च । (इक्षुविकार)

अध्वानं मैथुनं चिन्तनं शोकव्यायामशोषणम् । अहितं वर्ज्ययेत् सर्वं निवातशयनसनः ॥

लशुन सेवन के बाद होनेवाले उपद्रव –

त्यजेच्छीतोपचाराच्च लगुनानि उपयोजयेत् । शीतोपचारात् स्नेहाच्च जलोदग्मान्जुयात् ॥

लशुन सेवन समये शीतोपचार तथा स्नेह निषेध – उससे जलोदर उत्पत्ति

लशुन सेवन समये गुरु अग्नि देवता पूजन निषेध

आम लशुन प्रयोग सहन न कर पाने वाले व्यक्ती को –

1) धृतभृष्ट लशुन

2) मांस, दधि, यवगू सिद्ध कर लशुन सेवन कराये

लशुन प्रकार – 2

1) गिरीज – श्रेष्ठ

2) क्षेत्रज (देशी)

3) कटुतैल कल्पाध्याय –

कटुतैलोपदेशं तु वक्ष्यामि प्लीहनाशनम् । न ह्यतः परमं किंचित् औषधं प्लीहशान्तये ॥

प्लीहोदरी रूग्ण मे

1) सर्वप्रथम कल्पाणक या षटपल धृत से स्नेहन

2) मात्रा अनुसात कटुतैल पान

3) ततपश्चात पथ्याहार सेवन (स्नेहपान पश्चात उपचार पालन)

कृश व अतिविरिक्त व्यक्ती – मण्डादी सेवन

बलवान व मन्द विरीक्त व्यक्ती – मृदू ओदन सेवन

कटुतैल सेवनार्थ बलानुसार मात्रा – 3

- 1) ज्येष्ठ मात्रा – 12 पल
- 2) मध्यम मात्रा – 6 पल
- 3) हस्त मात्रा – 4 पल

कटुतैल सेवन काल मे पथ्य – उद्वर्तनं ब्रह्मचर्यं सुखशय्या स्वप्नं चिन्ता इष्टा भयं इनका त्याग

प्लीहोदर शान्त्यर्थ उपाय –

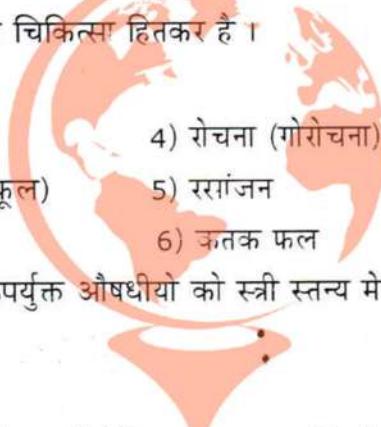
वामपाञ्चोपशयनं दधिमत्स्योपसेवनम् । लघु अल्प स्निग्धसेवा च शमयन्ति प्लीहोदरम् ॥
कर्णिकारस्य वा कल्कशूर्णितः स्वरसोऽपि वा । कटुतैलेन तत्रैर्वा सेवितः प्लीहनाशनम् ॥
नित्यं दधिमाष ओदकं अशनं, रागसर्षपतैलं सेवनं

4) षटकल्पाध्याय –

इसमे 6 औषधीयों के कल्प का विधान है ।

बालक के अक्षिरोग मे राग अश्रुं शोथं शांतं होने के 6 दिन बाद ‘आश्रोतन’ करे ।
तत्पश्चात संशमनं चिकित्सा हितकर है ।

षटकल्प –

- 
- 1) चक्षुष्या
 - 2) पुष्पक (जस्ते के फूल)
 - 3) माता (हरीतकी)
 - 4) रोचना (गोरोचना)
 - 5) रसांजन
 - 6) कतक फल

जन्म के चार पाच या छह मास बाद उपर्युक्त औषधीयों को स्त्री स्तन्य मे घृष्ण कर चक्षु मे पूरण करे ।

षटकल्प गुणधर्म –

1) हरीतकी –

स्वादुर्विकासिनी शीता त्रिदोषशमनी शिवा । कषाया स्तम्भिनी स्निग्धा चक्षुषे हिता ॥

2) रोचना –

रूक्षाष्णतिकलवणाऽनलध्नो पिच्छला धना । मग्न्या पापनाशिनी रोचना पक्ष्मवर्धनी ॥

3) पुष्पक –

तीक्ष्णमुष्यं मलहरं रक्तपित्तकफापहम् । दृष्टिप्रसादनं चाशु पुष्पकं शीतमन्ततः ॥

4) रसांजन –

त्रिदोषशमनं रूक्षं षड्ग्रसं चनुसारि च । शोधनं पक्ष्मजननं चक्षुष्यं च रसांजनम् ॥

5) निर्मलीबीज –

कषायमधुरं शीतमाशुदृष्टीप्रसादनम् । विकासि ह्रादनं स्निग्धं चक्षुष्यं कतकं विदुः ॥

पांचभौतिक तैल – पंचेंट्रिय वर्धन – तिमीर पटल काच लिंगनाश, खालीत्य पालीत्य इ. नाशन

5) शतपुष्पाशतावरी कल्पाध्याय –

शतपुष्पा गुणधर्म –

मधुरा बृंहणी बल्या पुष्टिवर्णानिवर्धनी । ऋतुप्रवर्तनी धन्या योनिशुक्रविशोधिनी ॥

उष्णा वातप्रशमनी मंगल्या पापनाशिनी । पुत्रप्रदा वीर्यकरी शतपुष्पा निर्दर्शिता ॥

शतावरी गुणधर्म –

शीता कषायमधुरा स्निग्धा वृष्णा रसायनी । वातपित्तविबन्धनी वर्णोजोबलवर्धनी ॥

स्मृतीमेधामतिकरी पथ्या पुष्पप्रजाकरी । भूतकल्मषशापघ्नी शतवीर्या शतावरी ॥

सेवनकाल – प्रावृट शरद वसंत

शतपुष्पा शतावरी सेवनयोग्य –

आर्तवं या न पश्यति पश्यन्ति विफलं च याः । अतिप्रभूतमत्यल्पमतिक्रान्तमनागतम् ॥

अकर्मण्यमविस्त्रंसि (कर्मसून्य, स्त्रावरहीत) किञ्जातमृतयाश्र याः । (अनेक प्रकार का स्त्राव)

दुर्वलाऽदृढपुत्राश्र कृशा वपुषाऽथ या । प्रस्कन्दना विवर्णाश्र याश्र प्रचुरमूर्तयः ॥

स्पर्शं च या न विन्दति याश्र स्युः शुष्कयोनयः । शतपुष्पाशतावर्यो स्यातां तत्रामृतं यथा ॥

100 पल शतपुष्पा कल्क सेवन से यथेष्ट पुत्र प्राप्ति होती है

शतपुष्पा शतावरी सेवन फल –

अतो बिडालपाकं लिह्यान्मधुधृताज्ज्वलुतम् । मेधावी शतपुष्पाया मासात् श्रुतधरो भवेत् ॥

शतपुष्पा शतावरी सेवनार्थ अनुपान –

- | | |
|---|---------------------------------|
| 1) अग्निवर्धनार्थ – मधुसह | 2) रूप वर्धनार्थ – क्षीरसर्पिसह |
| 3) बलवर्धनार्थ – तैलसह | 4) प्लीहरोग के लिए – कटुतैलसह |
| 5) कामला पाण्डुशोथ – माहिपाक्षीरमूत्रसह | 6) गुलम मे – एंडतैलसह |
| 7) कुष्ठ मे – खदिर वारीसह | |

6) रेवती कल्पाध्याय –

समुद्रमंथन व अमृतप्राप्ति वर्णन

जातहारिणी 1) पुष्प (आर्तवरूप रे विद्यमान गर्भ)

2) वपु (शरीर पिण्ड)

3) गर्भ

को नष्ट करती है ।

जातहारिणी नाम – रेवती पिलिपिच्छका रौद्री वारूणी

शास्त्रानुसार जातहारिणी भेद – 3

- | |
|---------------|
| 1) साध्य – 10 |
| 2) याप्य – 16 |
| 3) असाध्य – 8 |

1) साध्य जातहारिणी =

1) शुष्क रेवती –

आषोडवर्षप्राप्ता या स्त्री पुष्पं न पश्यति । प्रम्लानबाहुरकुचा तामाहुः शुष्करेवती ॥

बाहु व कुच (नितंब) तनु हो

2) कटम्भरा –

विना पुष्पं तु या नारी यथाकालं प्रणश्यति । कृशा हीनबला क्रुध्दा साऽपि चोका कटम्भरा ॥

विना रजोदर्शन के ही जो स्त्री उचित काल मे नष्ट हो जाती है ।

3) पुष्पध्नी –

वृथा पुष्पं तु या नारीं यथाकालं प्रपश्यति । स्थूललोमशगण्डा वा पुष्पध्नी साऽपि रेवती ॥

यथा समय रजोदर्शन होता है परंतु वह व्यर्थ जाता है ।

4) विकुटा –

कालवर्णप्रमाणैर्या विषमं पुष्पमृच्छति । अनिमित्तबलग्लानिर्विकुटा नाम सा स्मृता ॥

जिस स्त्री का पुष्प काल वर्ण एवं प्रमाण से विषम हो , अनिमित्त बल व ग्लानी उत्पन्न हो

5) परिस्त्रुता –

अभीक्षणं स्त्रवते यस्या नार्या योनि: कृशात्मनः । परिस्त्रुतेति सा ज्ञेया नारीणां जातहारिणी ॥
जिस कृश स्त्री की योनी से निरन्तर स्त्राव स्त्रवता है ।

6) अण्डधनी –

यस्यास्त्वालक्ष्यमालग्नमण्डं प्रपतति स्त्रियाः । अण्डधनीगिति ह्याहुस्तां दारूणां जातहारिणीम् ॥
जिस स्त्री का लक्ष्यायुक्त तथा चिपका हुआ अण्ड (गर्भ) गिर जाता है ।

7) दुर्धरा –

नातिनिर्वृत्तदेहाङ्गो यस्या गर्भो विनश्यति । दुर्धरा नाम सा ज्ञेया सुधोरा जातहारिणी ॥
जिसके देह के अंग अधिक प्रकट नहीं हुए हैं एसा गर्भ जिस स्त्री का नष्ट होता है ।

8) कालरात्री –

संपूर्णांगं यदा गर्भं हरते जातहारिणी । कालरात्रिती सा प्रोक्ता दुःखात् स्त्री तत्र जीवतित ॥
जब जातहारिणी संपूर्ण अंग वाले गर्भ का हरण कर लेती है ।

9) मोहिनी –

यया विषज्जते गर्भः प्रतीतो वाऽथ मुच्यते । स्त्रीविनशाय सा प्रोक्ता मोहिनी जातहारीणी ॥
जिसके द्वारा गर्भ आक्रान्त होता है अथवा वह अपने स्थान से मुक्त हुआ प्रतीत होता है ।

10) स्पन्दनी –

यस्या न स्पन्दते सा गर्भः स्तम्भनी नाम सा स्मृता ।

11) ऋोशना –

उदरस्थो यया ऋोत् ऋोशना नाम सा स्मृता ।

उदर मे स्थित गर्भ जातहरीनी के कारण आक्रोश करता है ।

उपरोक्त जातहारिणी जिवीत माताओं मे होती है; इनमे माताओं की मृत्यु नहीं होती है ।

इनमे पुष्ट (आर्तव) को नष्ट करने वाली असाध्य होती है तथा गर्भ को नष्ट करनेवाली साध्य होती है ।

2) याप्य जातहारिणी –

TIERRA

1) नाकिनी –

जायते तु मृतं नित्यं यस्या नार्यः सवे सवे । नाकिनीमिती तां विद्याद्वारूणां जातहारिणीम् ॥
जिस स्त्री का गर्भ नित्य मृत उत्पन्न होता है उसे नाकिनी कहते हैं ।

2) पिशाची –

जातं अपत्यं तु यस्याः सद्यो विनश्यति । पिशाची नाम सा घोरा मांसदी जातहारिणी ॥

जिस स्त्री का गर्भ उत्पन्न होते ही नष्ट हो जाते हैं उस मांसभक्षण करने वाली जातहारिणी को पिशाची कहते हैं

जिस स्त्री का पुत्र	8) नवम दिन मे नष्ट होता है – मातंगी
1) द्वितीय दिने नष्ट होता है – यक्षी	9) दशम दिन मे नष्ट होता है – भद्रकाली
2) तृतीय दिन मे नष्ट होता है – आसुरी	10) एकादश दिन मे नष्ट होता है – रैद्री
3) चतुर्थ दिन मे नष्ट होता है – कलि	11) द्वादश दिन मे नष्ट होता है – वर्धिका
4) पंचम दिन मे नष्ट होता है – वारूणी	12) त्रयोदश दिन मे नष्ट होता है – चण्डिका
5) षष्ठ दिन मे नष्ट होता है – षष्ठी	13) चतुर्दश दिन मे नष्ट होता है – कपालमालिनी
6) सप्तम दिन मे नष्ट होता है – भीरुका	14) पक्ष के बाद गर्भ नष्ट होता है – पिलिपिच्छीका
7) अष्टम दिन मे नष्ट होता है – याम्या	

असाध्य जातहारिणी लक्षण -

1) वश्या -

यस्यास्तु गर्भरूपाणि पण्च षट् सप्त वा मुने । म्रियन्तेऽनन्तरं वश्या असाध्या जातहारिणी ॥
जिसके गर्भरूप बालक 5 6 या 7 मास की अवस्था में नष्ट हो जाते हैं ।

2) कुलक्षयकरी -

म्रियन्ते दारका यस्याः कन्या जीवन्त्ययतः । कुलक्षयकरी नाम साऽसाध्या जातहारिणी ॥
जिसके पुत्र मृत होते हैं तथा कन्याएं बिना यत्न के भी जिवीत रहती हैं ।

3) पुण्यजननी -

जातं जातमपत्यं तु यस्याश्च म्रियते स्त्रीयाः । घोरा पुण्यजननी नाम साऽसाध्या जातहारिणी ॥
जिस स्त्री की संतान उत्पन्न होते ही मृत हो जाती है ।

4) पौरुषादिनी -

निष्पत्तं म्रियतेऽपत्यं यस्याः प्राक् षोऽशब्दतः । पौरुषादिनी सा प्रोक्ता असाध्या जातहारिणी ॥
जिसका पुत्र 16 वर्ष की अवस्था से पुर्व ही मर जाता है ।

5) संदंशी -

बिभर्त्यन्तं यदा गर्भ तदा पूर्वः प्रमीयते । संदंशीति वदन्त्येऽनामसाध्यां जातहारिणीम् ॥
जो स्त्री दुसरे गर्भ का धारण करती है तब उसका पहला गर्भ (पुत्र) मर जाता है ।

6) कर्कोटकी -

गर्भेणकं ग्रहेणकं मृत्युनैकेन युज्यते । एषा कर्कोटकीत्युक्ता दारूणा जातहारिणी ॥
कभी गर्भ कभी ग्रह कभी मृत्यु से युक्त हो जाता है ।

7) इन्द्रवडवा -

यमजं म्रियते यस्या एकं वोभयमेव वा । तामाहुरिन्द्रवडवामसाध्यां जातहारिणीम् ॥
जिसके एक या दोनों यमज मर जाते हैं ।

8) वडवामुखी -

एकनाभीप्रभवयोरेकश्चेन्म्रियते पुरा । म्रियते तद्वदप्येकस्तामाहुर्बडवामुखीम् ॥
एक नाभी से उत्पन्न होनेवाले यमज मेंसे एक की पहले मृत्यु हो जाय तो दुसरे की भी मृत्यु हो जाती है ।

लोकभेद से जातहारिणी प्रकार - 3

- 1) दैवी
- 2) मानुषी
- 3) तिरश्शीन

तिरश्शीन जातहारिणी प्रकार - 5

- 1) शकुनी
- 2) चतुष्पदी
- 3) सर्पा
- 4) मत्सी
- 5) वनस्पती

ये जातहारिणी सत जनों को आक्रान्त करती हैं ।

रेवती की प्रवृत्ति का कारण - अधर्म

स्त्रीयो मे प्रवेश करनेवाली जातहारिणी – 4

- 1) वर्णा 2) वर्णान्तरा 3) लिंगिनी 4) कारूकी

जातहारिणी आक्रमण से रक्षार्थ – काम्येष्ट्री यज्ञ का विधान किया है।

निश्चित सन्तानोत्पत्ती हेतु – प्रजावरण बंध का निर्देश किया है।

गर्भपात प्रतिषेधर्थ – वरण बंध

काल – प्राक अष्टम मास . अष्टम मास पश्चात निषेध

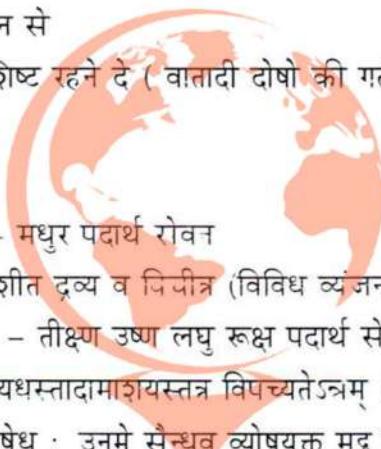
7) भोजनकल्पाध्याय –

अत्याशितानां वमनं प्रशस्तं मन्दाशिनामशनं तु युक्त्या ।

अति अशन मे वमन कराना प्रशस्त है व मन्द अशन मे युक्तीपूर्वक भोजन कराना हितकर है ।

कुक्षि विभाजन – 3 भागो मे

- 1) एक भाग – जल
- 2) एक भाग – भोजन से
- 3) एक भाग – अवशिष्ट रहने दे (वातादी दोषो की गति के लिए)



भोजन मे आहार क्रम –

- 1) भोजन के पूर्व मे – मधुर पदार्थ रोवन
- 2) भोजन मध्य मे – शीत द्रव्य व विवित्र (विविध व्यंजन)
- 3) भोजन के अन्त मे – तीक्ष्ण उष्ण लघु रुक्ष पदार्थ सेवन

आमाशङ्ख वर्णन – स्तनस्य वामस्य भवत्यधस्तादामाशयस्तत्र विपच्यतेऽन्नम् ।

कफ प्रकृति वा कफाधिक्य मे – मंड निषेध ; उनमे सैन्धव व्योषयुक्त मुद्र मण्डोटक प्रशस्त है ।

अत्यन्त उष्ण अन्न सेवन करने से – रेत (शुक्र), असृक (आर्तव), अण्ड (बीज), दूषित होते है ।

अग्निक्षय, रस का ज्ञान न होना व कफ पित्त का संचय होता है

9) विशेष कल्पाध्याय –

विविध सान्निपातो का वर्णन

सान्निपातज ज्वर लक्षण –

अकस्मादिन्द्रियोत्पत्तिरकस्मान्मूत्रदर्शनम् । अकस्माच्छीलविकृतिः सान्निपाताग्रलक्षणम् ॥

सान्निपात के भेद – 13

- 1) वातपित्तप्रधान सान्निपात – विधु
- 2) पित्तश्लेष्मप्रधान सान्निपात – फल्गु
- 3) कफवाताधिक सान्निपात – मकरी
- 4) वाताधिक सान्निपात – विस्फुरक
- 5) पित्ताधिक सान्निपात – शीघ्रकारी
- 6) श्लेष्माधिक सान्निपात – उल्वण (कफफण)
- 7) त्रिदोष के सम लक्षण युक्त सान्निपात – कूटपाकल

कूटपाकल सान्निपात लक्षण –

कूटपाकलविग्रस्तो न श्रृणोति न पश्यति । न स्पन्दते न व्रवीति (बोलना) न अभिष्टौति न निन्दति ॥

केवलोच्छवासपरमः स्तव्याङ्गः स्तव्यलोचनः । त्रिरात्रं परमं तस्य जन्तोर्भवति जीवितम् ॥

सान्निपातज व्याधि मे सर्वप्रथम चिकित्सा – कफ की

इलेष्मनिग्रहमेवादौ कुर्याद् व्याधौ निदोषजे ।

सान्निपात मे मधु निषेध –

सर्वेषु सान्निपातेषु न क्षोद्रमवचारयेत् । शीतोपचारि हि क्षोद्रं शीतं चात्र विरुद्ध्यते ॥
मधु शीतोपचारी है व सान्निपात मे शीतोपचार विरोध है ।

सान्निपात मे उष्णोपचार –

उष्णोपचारी सततं सन्निपाती प्रशस्यते । वर्जयेच्च दिवास्वप्नं धृति सत्वं च संश्रयेत् ॥

सान्निपात मे अन्य उपक्रम –

लंघनं स्वेदनं नस्यं मर्दनं कवलग्रहः । एतान्यादौ प्रयुण्जीत सन्निपातेषु युक्तिवित् ॥

सन्निपात मे लंघन मर्यादा –

त्रिग्रां पण्चरात्रं वा दशरात्रं अथापि वा । लंघनं सन्निपाते तु कुर्याद्वाऽरोग्यदर्शनात् ॥

सन्निपात मे वर्ज्य –

न तु स्नेहान्नपानं वा गुरुण्यन्नानि वा भिषक् । भोजयेत् सन्निपातेषु तथ्यस्य विषभोजनम् ॥

सन्निपात असाध्यता –

सर्वलक्षणसंपन्न सर्वोपद्रवसंयुतः । त्रिग्रात्रोपेक्षितश्चापि सन्निपातो न सिध्यति ॥

सन्निपात ज्वर चिकित्सार्थ – कठू सर्पि निर्देश

ज्वर की उष्णता द्वारा संतप्त हुए रोगी मे सर्वप्रथम उष्ण विधी निर्देश

पित्तज ज्वर मे न शीत न उष्ण उपचार करना चहिए ।

10) संहिताकल्पाध्याय –

काश्यपसंहितोक्त अध्याय गणना

व्याधी प्राक् (पूर्व) उत्पत्ति –

ज्वरो गुरुत्वाद् गुल्मस्तु धावतां प्लवनात् प्लीहा । भ्रमो विषादाद्विडभेदो धावतां वेगधारणम् ॥

तृष्णा च रक्तपित्तं च श्रमादुज्जो च धावताम् । हिककाश्वासौ कफाधिक्याध्दावतां पिबतां जलम् ॥

1) शरीर के गुरु होने से ज्वर उत्पत्ति

2) शरीर के धावन से गुल्म उत्पत्ति

3) शरीर के प्लवन से प्लीहा उत्पत्ति

4) विषाद से भ्रम की उत्पत्ति

5) धावतां वेगधारण से विडभेद (अतिसार) की उत्पत्ति

6) उष्णकाल मे श्रम से तृष्णा व रक्तपित्त की उत्पत्ति

7) धावतां जलपान व कफाधिक्य से हिकका श्वास की उत्पत्ति

उपरोक्त रोग सत्ययुग तथा त्रेता युग के मध्यकाल मे उत्पन्न हुए ।

जीवक से वृद्धजीवक नामकरण वर्णन

काश्यप संहिता तंत्रकर्ता – वृद्धजीवक

प्रतिसंस्कर्ता – वात्स्य

खिलस्थान -1) विषमज्वरनिर्देशीय अध्यायसमज्वर लक्षण -

अल्पहेतुर्बहिर्मार्गो वैकृतो निरूपद्रवः । एकाश्रयः सुखोपायो लघुपाकः समो ज्वरः ॥

विषमज्वर आश्रय -

1) सतत ज्वर - आमाशय

2) अन्येद्युष्क ज्वर -उर

3) तृतीयक ज्वर - कण्ठ

4) चतुर्थक ज्वर - शिर (संतत ज्वर नहीं माना है)

चतुर्थक ज्वर - त्रिदोषसंभवत्वाच्च भूतसंस्पर्शनादपि । दुश्चिकित्स्यतमो ह्येष तस्माध्येनमुपऋमेत् ॥

चिरानुबंधी विषमज्वर एक दिन दो दि तीन दिन या चार के बाद वृद्धी को प्राप्त होता है ।

विषमज्वर व दिशा सम्बन्ध -

1) सतत ज्वर - आग्नेय 2) द्वितीयक ज्वर (अन्येद्युष्क) - वायव्य 3) तृतीयक ज्वर - वैश्वदेव

4) चतुर्थक - इशान

ज्वरसंतप्त शरीर मे सर्वप्रथम उष्ण चिकित्सा -

ज्वरोभ्यानाभिसंतप्ते प्रागुष्णादिक्रियाविधिः ।

वातपित्तप्रधान ज्वर मे - कल्याणक घृत या पम्चव्य घृत से स्नेहन

2) विशेषनिर्देशीयो नाम द्वितीयोऽध्याय :

ज्वर संदर्भ मे विशेष विवरण

निरामज्वर प्राप्ती - 8 दिन बाद (लघुत्वं च अष्टरात्रे च निरामज्वरमादिशेत्)

ज्वर चिकित्सा सूत्र -

लंघनं स्वेदनं पेया त्रिविधा दीपजान्विता । ओटनस्त्रिविधो यूषः कषायस्त्रिविधो रसः ॥

सर्पिरभ्यणजनं बस्तिः प्रदेहः सावगाहनः । ज्वरापहः समुद्दिष्टो लंघनादिरयं ऋमः ॥

ज्वर मे पाचन कषाय पान समय -

पच्यन्ते सप्तरात्रेण दोषाः सप्तसु धातुषु । तस्मात् कषायं सप्ताहे पाचनीयं विधापयेत् ॥

शमनं स्त्रंसनीयं वा यथास्वमतः परम् ॥

सात दिन मे धातुओ मे स्थित दोषो का पाचन होता है अतः आठवे दिन पाचन कषाय पिलाना चहिए ।

उसके उपरान्त अवस्थानुसार स्त्रंसन या शमन कषाय का प्रयोग करना चहिए ।

चरक 6 वे दिन पश्चात पाचन कषाय पान का निर्देश

दोष उत्क्लेष मे त्रिविध कर्म -

समुत्क्लिष्टेषु दोषेषु त्रिविधं कर्म निश्चितम् । शोधनं शमनं चैव तथा शमनशोधनम् ॥

1) शोधन औषध - बलवान तथा तीव्र (उत्तम) अग्नि, तीव्र आमय वाले पुरुष मे

2) शमन औषध - बलवान व्यक्ती परंतु अल्प दोष, नातिवृद्ध विकार व नातिक्लेशसह व्यक्ती मे

3) शमन शोधन औषध - दुर्बल व्यक्ती, मध्य दोष, बलवान व्याधी से पिडीत हो

शमन शोधन व्याख्या -

नात्यर्थम शोधयति यदोषान् संशमयत्यपि । तत्र मध्यबलोपेतं द्रव्यं शमनशोधनम् ॥

3) भैषज्योपक्रमणीयः तृतीयाध्याय

मानस रोग चिकित्सा सूत्र -

धृतिवीर्यस्मृतिज्ञानविज्ञानैर्मानसं जयेत् ।

शारीर रोग चिकित्सा सूत्र -

शारीरं भैषजैः कालयुक्तिदैवव्यपाश्रयैः ।

आगन्तु रोग चिकित्सा -

निजवत करे । निज रोगके पूर्वरूप देखकर संशोधन चिकित्सा करे ।

- 1) संशोधन प्रकार - 7
- 2) चिकित्सा - चतुष्पाद पर निर्भर होती है
- 3) चतुष्पाद ही - औषधी कहलाता है
- 4) औषधी युक्ती तथा दैव के अधीन होती है
- 5) वमन आदी क्रियाओं को युक्ती कहते हैं
- 6) यज्ञ आदी को दैव कहते हैं

औषध व्याख्या -

ओसो नाम स रसः सोऽस्यां धीयते यज्ञदोषधिः । ओसादारोग्यमाधते तस्मादोषधिरोषधः ॥

ओस रस को कहते हैं; यह रस जिसमें धारण किया जाता है उसे औषधी कहते हैं ।

भेषज - भिषक को जानने योग्य होने से उसे भेषज कहते हैं ।

भैषज्य - चिकित्सा में हितकारी होने से भैषज्य कहते हैं ।

अगद - युक्तीपूर्वक प्रयोग से रोग पुनः नहीं होते इसलिए अगद कहते हैं ।

कषाय - कण्ठस्य कषणात् प्रायो रोगाणां वाऽपि कर्षणात् । कषायशब्दः प्राधान्यात् सर्वयोगेषु कल्प्यते ।

औषधी भेद - 7

चूर्णं शीतकषायश्च स्वरसोऽभिषवस्तथा । फांटः कल्कस्तथा क्वाथो यथावतं निबोध मे ॥

- 1) चूर्ण - सूक्ष्मचूर्णीकृतं चूर्णं नानाकर्मसु युज्यते ।
- 2) शीतकषाय - शीतकषायः स्वादन्तरिक्षामबुप्लुतः । आकाशाच्च जल के साथ मिले हुए शीत द्रव्य को
- 3) अभिषव - पूर्वोक्त द्रव्य को रात्रभर पानी में रखकर अच्छी प्रकार से सिध्द किया जाय
- 4) स्वरस - द्राक्षेक्षवामलकादीनां पीडनात् स्वरसः स्मृतः ।
- 5) फाण्ट - द्रव्य को अन्तरीक्ष जल से पक्व कर अर्धावशेषीत रखने पर फाण्ट कहते हैं
- 6) कल्क - कल्कः कल्कीकृतः योज्यः
- 7) क्वाथ - द्रव्य को अग्निपक्व कर पाद शेष रखना

औषध सेवन काल - 10

- 1) पूर्व भक्त
- 2) मध्य भक्त
- 3) अधः भक्त
- 4) सामुदग
- 5) मुहुर्मुहुः
- 6) सभक्त
- 7) भक्तयोर्मध्ये
- 8) ग्रास
- 9) ग्रासान्तरे
- 10) अभक्त

12 वर्ष की पूर्व औषधी एकान्त रूप में प्रयोग या अहनि (नित्य) प्रयोग नहीं करना चाहिए ।

वय विभाजन - त्रिविध

- 1) गर्भ
- 2) बाल
- 3) कुमार

पुनः त्रिविध - 1) यौवन 2) मध्य 3) वृद्धि

- 1) (बाल) क्षीरपावस्था – वर्षावरः स्याद् यावद् पिबति पयः । इसे बाल अवस्था कहते हैं ।
- 2) कोमार – यावत् षोडशवर्षिकः । अन्नादः सर्व एव स्यात् कोमारे वयसि स्थिती ।
16 वर्ष तक सम्पूर्ण अन्नाद बालक कोमार अवस्था में होते हैं ।
- 3) युवा – अतः परं धातुसत्त्वबलवीर्यपराक्रमैः । वर्धमानैः चतुस्त्रीशद् युवा ।
धातु सत्त्व वीर्य आदी विवर्धमान अवस्था को युवा कहते हैं ।
- 4) मध्यम अवस्था – धात्वादिभिः स्थिरीभूतैर्यावदासप्ततिर्नरः ।
धातु आदी स्थिर होने तक 70 वर्षकी अवस्था तक को मध्यमावस्था कहते हैं ।
- 5) वृद्ध – पश्चात् क्षीयमाणैः यथाक्रमम् । वृद्धो भवति मन्दात्मा प्रवृत्तिर्यावदायुषः ।
पश्चात् धातु आदी क्षीयमाण होनेपर मन्दात्मा व्यक्ति आयु पर्यन्त वृद्ध कहलाता है ।
वृद्ध व्यक्ति की औषध मात्रा – 16 वर्ष के बालक की अपेक्षा उत्तरोत्तर क्षीण हो जाती है ।
100 वर्ष या उससे अधिक वय में क्षीरान्नाद बालक समान समझे ।

बालक औषधी मात्रा –

बालक वय	घृत औषधी मात्रा
जातमात्र	कोलास्थिसंमिति
पंचरात्रपर्यन्त वा दश रात्रपर्यन्त	उपरोक्त से अधिक
20 दिवसपर्यन्त –	कोलार्धसंमिति
एक मासपर्यन्त	कोलमात्र
दो मास तक	कोल से अधिक
तृतीय मास	द्विकोल
चतुर्थ मास	शुष्कामलक
पंचम तथा षष्ठ मास	आर्द्र आमलक संमिति
सप्तम तथा अष्टम मास	आर्द्र आमलक से अधिक

- # TIERRA
- 1) वातप्रधान क्षीरान्नाद बालक वन्हि अनिश्चित होने से – उसकी स्नेहमात्रा अग्नि नुसार निश्चीत करे ।
- 2) अन्नाद बालक सम पावक होने से – आमलक मात्र सर्पि मात्रा होनी चहिए ।
- अष्टम मास पर्यन्त का बालक – स्नेह से चतुर्भाग भेषज घृत सह सेवन
अष्टम मास के बाद जलपिष्ट औषध देनी चहिए ।

- 1) दीपनीय चूर्ण मात्रा – अग्रपर्वागुलिग्राह्या
- 2) जीवनीय व संशमनीय मात्रा – अग्रपर्वागुलि से द्विगुण
- 3) उर्ध्वभागे व विरेचने मात्रा – अग्रपर्वागुलि से अर्ध

क्वाथ मात्रा –

- 1) वामक तथा विरेचक क्वाथ मात्रा – 1 प्रसृत
- 2) दीपनीय व संशमनीय क्वाथ – उपरोक्त से द्विगुण (2 प्रसृत)

कल्क मात्रा –

- 1) दीपनीय कल्क – 1 अक्षमात्रा
- 2) जीवनीय व संशमन कल्क – इससे द्विगुण (2 अक्षमात्रा)
- 3) छर्दनीय व विरेचन कल्क – इससे अर्ध मात्रा (1/2 अक्षमात्रा)

औषध मात्रा ही चिकित्सा का मूल है ।

4) यूषनिर्देशीय चतुर्थ अध्याय –

आहार – सर्वभूतानाम स्थितीकरणाम , प्राणिनां प्राणधारणम् ।

न च आहारसमं किंचित्भैषज्यमुपलभ्यते ।

आहार = महाभैषज्य

भेषजेनोपपन्नोऽपि निराहारे न शक्यते । तस्माद्दिष्मिभिराहारे महाभैषज्यमुच्यते ॥

विचारणानुसार आहार प्रकार = 12

काल आदी नुसार आहार प्रकार – 24

यूष गुणधर्म –

रोचनो दीपनो वृष्यः स्वरवर्णबिलानिकृत । प्रस्वेदजननो मुख्यस्तुष्टिपुष्टिसुखावहः ॥

यूष दोषधनत्व –

1) वातधन – स्नेह उष्णभावात्

2) पित्तधन – स्नेह कषायतः

3) कफधन – इधं उष्ण व संस्कारात्

यूष प्रयोजन – द्रवीकरण व पाकार्थ

यूष – द्रव्यैः बहुविधैर्द्रवैस्तथा चान्यैरतण्डुलैः । यूष इत्युच्यते सिद्धो ॥

यवागु – यवागुः तण्डुलैः सह

तण्डुल व्यतिरीक अन्य द्रव्य से सिद्ध किया जाने वाला यूष व तण्डुल सह सिद्ध किये जानेवाला यवागु

काश्यपानुसार यूष संख्या – 25

यूष योनी (उत्पत्ती) – द्रव (द्रवयोनयः)

यूष प्रकार (रसानुसार) – 3

1) कषायमधुर

2) कषायाम्ल

3) अम्ल



स्नेहयोगनुसार प्रकार – 3

1) कृत 2) अकृत 3) कृताकृत

कर्मानुसार यूष भेद – 3

1) पाचन

2) कर्षण

3) बृंहण

दोषभेदानुसार यूष प्रकार – $25 * 3 = 75$

यापनानुसार भेद – साध्य याप्य असाध्य नुसार = 75

रसाश्रयानुसार = 50

पंचकर्मार्थ प्रयुक्त यूष – 5

1) मुद्रमण्ड – निस्तुष मुद्र दीपन द्रव्य से सिद्ध किया हुआ

2) विरसिका – मुद्र व तक्राम्ल द्वारा सिद्ध किया हुआ यूष

3) रोचक – दाढिम व उदश्चित सिद्ध यूष

7) संशुद्धिविशेषणीय नाम सप्तमो अध्याय -

वमनार्थ - बीभत्स औषध

विरेचनार्थ - अबीभत्स हुदय औषध

वमन विरेचन दिन -

स्निग्धो वमेत्तीयोऽहि चतुर्थे स्त्रंसनं पिवेत् ।

वमन पूर्व आहार - कफवृद्धीकर

विरेचन पूर्व आहार - द्रवप्राय, स्निग्ध उष्ण विशद लघु

नातिस्निग्ध विरेचन निषेध - विष, विसर्प, शोथ, वातरक्त, हलीमक, कामला, पांडु

शोधनार्थ कषाय मात्रा

शोधन प्रकार	उत्तम मात्रा	मध्यम मात्रा	हस्त मात्रा
वमन कषाय	4 अंजली	3 अंजली	2 अंजली
विरेचन कषाय	2 अंजली	1 1/2 अंजली	1 अंजली

- 1) विरेचन अतियोगजन्य विकार मे - सर्पिपान वा मधुकादिविपक्व तैल अनुवासन (यष्टी)
- 2) दुर्वान्त, दुर्विरिक्त, स्निग्धदेह व बहुदोष मे - अयोग होनेपर पुनः शोधन
- 3) दुर्बल होनेपर पुनः सेहन स्वेदन कर शोधन
- 4) दुश्छर्दन व कुरकोष्ठ व्यक्ते मे शोधन न कर - संशमन या बस्ती
- 5) दुर्बल व अल्पदोष मे - मृदू सशोधन हितकर
- 6) शोधन समये दोष स्तोक स्तोक निर्हरन हो तो - उष्णाम्बुपान
- 7) औषधं सेवन पश्चात उद्धार, शूल व न उर्ध्व न अध्यप्रवृत्ती हो तो - स्वेदन
- 8) मात्रावत विरेचन होनेपर भी उद्धार हो तो - वमन द्वारा शोष औषध वा दोष शीघ्र निर्हरण
- 9) अतिप्रवृत्ती मे औषध जीर्ण होनेपर - स्तंभन
- 10) दीप्ताग्ने कुरकोष्ठ बहुदोष व उदावर्त मे - फलवर्ती द्वारा मल निर्हरण

8) बस्तिविशेषणीय नामाष्टमो अध्याय:

बस्तिदानात् परम नास्ति चिकित्साऽङ्गसुखावहा ।

- 1) कर्म बस्ति - शरीर बल अधिक होने पर प्रयोग
- 2) काल बस्ति - शरीर बल मध्यम व वातपित्त संसर्ग होनेपर प्रयोग
- 3) योगबस्ति - स्नेह बस्तियोग कम होने से तथा लघु होने से योग बस्ति कहते हैं ।

कफसंसर्ग होने से तथा वात का बल नातितीव्र हो तो प्रयोग करे ।

बस्ति संख्या -

- 1) कर्म बस्ति - अनुवासन = 24 निरूह बस्ति = 6
- 2) काल बस्ति - अनुवासन = 12 निरूह = 3
- 3) योग बस्ति - अनुवासन = 5 निरूह = 3

एकुण बस्ति = 53 (30+15+8)

- बस्ति पश्चात आहार -
- 1) वातरोग मे - मांसरस
 - 2) पित्तरोग मे - क्षीर
 - 3) कफरोग मे - यूष

चतुर्भृद्र कल्प – चार स्नेहबस्ती प्रारम्भ मे + चार अन्त मे + इनक बीच मे चार आस्थापन

यह बस्तीयो का कल्प उपद्रवशून्य होता है ।

अयुग्मो बस्तयो देया न तु युग्मा: कथणचन । बस्ति विषम संख्या मे ही देनी चाहिए ।

मात्रा बस्ति मात्रा –

- 1) हस्त मात्रा – 1 प्रकुंच
- 2) मध्यम मात्रा – 1 1/2 प्रकुंच
- 3) उत्तम मात्रा – 2 पल

अपस्तनस्य (क्षीरपान करने वाला बालक) मे 1/2 पल

9) अथ रक्तगुल्मविनिश्चयाध्यायो नवमः ।

शरीर मे आशय –

विषमूत्रक्रिमिपक्वामकफवाताशयाः पृथक् । सप्तैते देहिनां कोष्ठे स्त्रीणां गर्भाशयो अष्टमः ॥

- 1) विट आशय
 - 2) मूत्राशय
 - 3) कृमी आशय
 - 4) पक्वाशय
 - 5) कफाशय
 - 6) वाताशय
 - 7) आमाशय
- रक्तगुल्म इतर वर्णन – स्त्रीरोग

रक्तगुल्म मे गुल्म शिथीलीकरणार्थ – जांगल मांससिद्ध बिल्व व श्योनाक क्वाथ

वायुशमनार्थ – वायोरूपशमनार्थ च फलतैलानुवासितम् । आस्थापयेत् सकृद द्विर्वा शूलाटोपनिवृत्तये ॥

10) अंतर्वनी चिकित्साध्याय

गर्भिणी चिकित्सा वर्णन

1) गर्भिणी ज्वर –

गर्भिणीनां ज्वरः कष्टः सर्वव्याधिषु पार्थिव । ज्वरोष्मणाऽभितप्तस्तु गर्भो यात्येव विक्रियाम ।
तस्माज्ज्वरचिकित्सां तु पूर्वमेव निबोध मे ।

गर्भिणी ज्वर हेतु – क्षुधा, श्रम, अप्यंजन, रौक्ष्य, औष्य स्नेह स्वेद औषध विभ्रम, तृणपुष्पगंध

चिकित्सा – गर्भिणीं ज्वरितां नारीणामेकाहमुपवासयेत् । ततो दद्यादलवर्णां पेयां स्नेहतिवर्जिताम् !!

तरुण ज्वर अभ्यंग निषेध –

तरुणे तु ज्वरे नार्या अभ्यंगो न प्रशस्यते । गर्भे तु तरुणे दत्तो गर्भधाताय कल्पते ॥

गर्भिणी मे तीक्ष्ण अन्नपान, व्यायाम, स्वेदन निषेध

चार मास पूर्व गर्भिणी मे औषध निषेध (चरक मे आठ मास तक निषेध)

गर्भिणी मे विविध उपक्रम व परीणाम

उपक्रम	परीणाम
1) नस्य	प्राणस्तु परिहीयते
2) धूमपान	कुणि, अन्ध, दुर्बलेंद्रिय, विवर्ण गर्भ
3) शिरोविरेक	वातप्रकोप से गर्भधात वा वातरोगी गर्भ
4) स्वेदन	तरुण गर्भ मे पित्तप्रकोप व गर्भच्यावन, स्थिर गर्भ मे गर्भवैवर्ण्य
5) वमन	गर्भधात
6) विरेचन	गुरु उष्ण तीक्ष्णत्वात गर्भधातक
7) आस्थापन व अनुवासन	गर्भ हीनांग वा गर्भस्त्राव

परिकर्तिका व चिकित्सा -

गर्भिण्या वातिकी यस्या जायते परिकर्तिका । बृहतीबिल्वमानन्तैर्यूषं कृत्वा तु भोजयेत् ॥

1) गर्भिणी मे वातिक परिकर्तिका – बृहती बिल्व अनन्ता सिद्ध यूष

2) पैत्रिक परिकर्तिका – मधुक, हंसपादी वितुन्नक मधु व तण्डुलोदक सह पान

3) कफज परिकर्तिका – कंटकारी, श्वदंष्ट्रा, अश्वत्थ लवणसह भोजन मे प्रयोग

गर्भिणी को त्रिवृत मणि श्रोणी मे धारण करे ।

प्रसव के बाद सिर पर धारण करे । – सूतिका के लिए विशेषतः रक्षोच्छ

11) सूतिकोपक्रमणीय अध्याय –

दुष्प्रजाता स्त्री मे 64 रोग उत्पन्न होते हैं ।

प्रसव के बाद एक मास तक स्त्री प्रसूता कहलती है ।

सूतिका चिकित्सा – उष्ण बलातैल पूरीत चर्मावनधमासन्दी मे उपवेशन – योनी प्रसीदती ।

तत पश्चात प्रियंगु आदी की कृशग्रा से स्वेदन

स्वेदन व ततपस्चात तीन या पाच दिन तक मंड सेवन

देशभेदानुसार सूतिका परिचर्या –

1) आनूप देशस्थ सूतिका – मुख्यतः वातकफज रोग होते हैं

अभिष्यंट होने से प्रारंभ मे स्नेह निषेध, ततपश्चात

स्वेदो निवातशयनं सर्वमुष्णां च शस्यते ।

2) जांगल देशस्थ सूतिका – मुख्यतः वातपित्तज रोग होते हैं

तदत्र स्नेहसात्म्यत्वात् स्नेहादिः स्यादुपक्रमः ।

कुमारप्रसवे तैलं कुमारीप्रसवे धृतम् ।

धृत जीर्ण पश्चात पाच या सात दिन तक दीपनीय द्रव्य सिद्ध यवागु पान

ततपश्चात मण्डादी उपक्रम

3) साधारण देश – देशो साधारणे चास्या हितः साधारणो विधिः ।

सूतिका ज्वर –

सर्वषामेव रोगाणां ज्वरः कष्टतमो मतः ।

सूतिका ज्वर प्रकार – 6 1) वारज

4) सान्निपातज

2) पित्तज

5) ग्रहज

3) कफज

6) स्तन्यज

उपरोक्त ज्वर हेतु – वेगसंधारण, रौक्ष्य, व्यायाम इ. स्तन्यागमाद्, ग्रहबाधाद् अजीर्नाद्, दुष्प्रजायनाद्

सूतिका मर्यादानुसार चिकित्सा – प्रसूत की धातुए 6 मास मे स्वाभाविक अवस्था मे आती है ।

उस अनुसार व्याधी चिकित्सा करे ।

ज्वर लक्षण – 4) सान्निपातज ज्वर – मुर्हुः शीतो मुर्हुः दाहो मुहुरुष्मा समोऽसमः ।

5) स्तन्यज ज्वर – तृतीयेऽन्हि चतुर्थं वा नार्याः स्तन्यं प्रवर्तते। पयोवहानि स्त्रोतांसि संवृतान्यभिघटयेत् ।

करोति स्तनयोः स्तम्भं पिपासां हुदयद्रवम् । कुक्षिपार्श्वं कटिशूलमङ्गमर्दं शिरोरुजम् ॥

एतत् स्तन्यागमोत्थस्य ज्वरस्योक्तं स्वलक्षणमा । स हि पियुषसंशुद्धौ ऋममात्रेण तिष्ठति ।

6) ग्रहज ज्वर –

ग्रहावलोकितत्रासावधातावधूननैः । ज्वर्यते चेत् प्रसूता स्त्री वक्ष्यामि लक्षणम् ॥
उद्वेपको निष्ठनं (अंग मे ऐडा) चक्षुषो विभ्रमः श्रमः । कप्मनं हस्तनेत्राणां हारिद्रमुखनेत्रता ॥
क्षणेन श्यावता अंगानां क्षणेन च सर्वर्णता । सुप्रबोधः सह क्रोशः केशलुचनम् ॥
पवनज्वररूपाणि भूयिष्ठानि करोति च । विधिर्ग्रहणो हितः क्रमो यश्चानिलेज्वरे ॥

विशेषतः वातज ज्वर के लक्षण उत्पन्न होते हैं अतः ग्रहनाशक वा वातघ्न चिकित्सा करनी चहिए ।

सूतिका ज्वर चिकित्सा –

- 1) श्लेमाभिष्ठंदिनी स्थूल अक्लिन्न स्त्री मे – लंघन
- 2) रूक्ष, निस्त्रुतरका कृश, वातज्वरादित – शमन चिकित्सा तत मे पेया व मंडादो उपऋम करे ।
पेया – पेया हि दीपयति अग्निं धातून् संशमयत्यपि ।
मंड – गर्भदोषावशेषधो मण्डो दोषविपाचन : ।

नस्य बस्ती वमन निषेध –

गर्भाशये च्युते नार्या दोषास्तदनुगमिनः । च्यवन्नि तस्माद्वमनं नस्यं बस्तिविरेचनम् ॥

उत्क्लिष्ट दोष होने पर – मृदृ वमन

दुष्प्रजाता कि व्याधीया स्नेह से ही विशेषतः शांत होती है ।

वातज्वर मे – संकर स्वेद

सान्निपातज ज्वर चिकित्सा सूत्र –

सन्निपातेषु दोषेषु यो दोषो बलवान् भवेत् । तमेवादौ प्रशमयेत् शोषदोषमतः परम् ॥

तीनो दोषो के बल विशेष अंतरं न हो तो सर्वप्रथ कफ दोष चिकित्सा व तत अनन्तर वात व पित्त की चिकित्सा

12) जातकर्मात्तराध्याय –

शिशु को प्रथम मास मे सूर्य दर्शन व प्रदोष काल मे चन्द्रमा दर्शन कराये ।

चतुर्थ मास मे गृहनिष्ठमण व देवतागार प्रवेश

षष्ठ मास मे उपवेशन संस्कार

षष्ठ मास मेही फलप्राशन संस्कार

दशमे मास मे प्राजापत्य नक्षत्र समये अन्नप्राशन संस्कार

अन्न महत्व – यथा सुराणाममृतं नारेन्द्राणां यथा सुधा । तथाऽन्न पाणिनां प्राणा अन्नं चाहुः प्रजापतिम् ॥

बालक को द्वादश मास उपरान्त अल्प अन्न देना चहिए ।

13) कुकुणक चिकित्साध्याय –

बालक मे नयन रोग कारण – माता का दुष्टस्तन्य सेवन

कुकुणक लक्षण –

- 1) अभीक्षणं अस्त्रं स्त्रवते । (चक्षु से निरन्तर स्त्राव)
- 2) न क्षीवती दुर्मनः (क्षवथु आती नही)
- 3) नासिकां परिमृद्धाति कर्ण वाच्छति दुःखितः
- 4) ललाटमक्षिकूटं च परिमर्दति
- 5) नेत्रे कण्डूयतेऽभीक्षणं पाणिना चाप्यतीव तु
- 6) स प्रकाशम न सहते अश्रु चास्य प्रवर्तते
- 7) वर्त्मनि श्वयथुश्वास्य जानीयात् तं कुकुणकम् ।

कुकुणक दोषाधिक्य – कफ + रक्त

चिकित्सा -

धात्री को वमन ; वमन पश्चात स्तन दोहन (स्तन से दुष्ट क्षीर निकालना)
बालक में फणिज्जक पत्र व सुरसा आदी से आश्वोत्तन
पद्यक उत्पल मधुक आदी का मुखलेप
कोकिला गुटिका – बालक के चक्षुव्याधी में श्रेष्ठ
लोहितिका गुटिका – अक्षिरोगों में हितकर

14) विसर्प चिकित्सा -

विसर्प विशेषता – आशीविषेषमम् , दुःसह सुकुमाराणां कुमाराणां विशेषत : ।

प्रकार – ७ वातजः पित्तज कफज सान्निपातज द्वंद्वज

रक्तावसेचन परम चिकित्सा! -

न विना रक्तपित्ताभ्यां वैसर्पे जातु जायते । तस्माद्रक्तावसेकोऽन्न भेषजं परमुच्यते ।

- 1) वातज विसर्प में प्रथम अनुबन्धना के कारण – पूरण, प्रपुरान वा कुम्भ सर्पि का प्रयोग करना चाहिए अभ्यंग, लेप, वेशावार प्रयोग हितकर

- 2) पित्तज विसर्प – तिक्कक घृतपान व पश्चात विरेचन

- 3) कफज विसर्प में सर्वप्रथम वमन ; अल्पदोष हो तो लंघन हितकर

इतर रोग चिकित्सा -

मसूरिका सविस्फोटः कक्ष्याम पाम तथैव च । संसृष्टपित्तरक्तोत्था वैसर्पवदुपक्रमेत् ॥

15) चर्मदलचिकित्साध्याय

चर्मदल हेतु -

- 1) क्षीरप व कुमारों में – स्तन्यदोष से

- 2) क्षीरान्नाद में – स्तन्यदोष व आहार दोष से

- 3) सुकुमाराणां अस्थिरथातुनां इ

अन्नाद तथा वयस्थ में यह रोग नहीं होता – स्थिरकठिनसहत त्वक अस्थिधातु होने के कारण, नित्यव्यायोमचितगात्र व क्लेशसहता होने से

चर्मदल में वातप्राधान्य होता है

प्रकार -- 4

- 1) वातज 2) पित्तज 3) कफज 4) सान्निपातज

- 1) वातज चर्मदल – सकण्डूस्फुटितपरूषश्यावावभास मण्डलानि

- 2) पित्तज चर्मदल – रक्तनीलावभासानिश्यावपीताभानि शुष्कछविनी उष्णानि कुथितदोषपूर्णानि मण्डलानि उत्पद्यन्ते

- 3) कफज चर्मदल – शीतस्तिमीतसान्द्रमण्डलैः श्वेताभैर्बहुभिः नात्यर्तवेदनाकरैः सर्षपमात्राभिः पिङ्काभिरूपचितैश्च

- 4) सान्निपातज चर्मदल – कृष्णरक्तावभासानि दग्धगुडप्रकाशानि त्रिभिर्गुणैरन्वितानि क्षिप्रपाकिनी विगच्छिनी अवदीर्णानि पूतिकुणपविस्त्राविणी

चिकित्सा -

- 1) वातज चर्मदल – स्नेहन स्वेदन पश्चात त्रिवृत चूर्ण वा घृत पान

- 2) पित्तज चर्मदल – स्नेहाभ्यंग वमन व विरेचन

- 3) कफज चर्मदल – स्नेहन स्वेदन व वमन

16) अम्लपित्तचिकित्साध्यायसंप्राप्ती –

वातादयः प्रकृप्यन्ति तेषामन्यतमो यदा । मन्दीकरोति कायाग्निमग्नौ मार्दवमागते ॥
 एतान्येव तथा भूयः एवमानस्य दुर्मते । यत्किंचिदशितं पीतं देहिनस्तथ्दी दद्यति ॥
 विदग्धं शुक्रताम् याति शुक्रमामाशये स्थितम् । तदम्लपित्तमित्याहुर्भूयिष्ठं पित्तदूषणात् ॥

सामान्य लक्षण –

विडभेदो गुरुकोष्ठत्वं अम्लोत्कलेशः शिगेरुजा । हृच्छूलमुदराध्मानम् अंगसादो अंत्रकूजनम् ॥
 कण्ठोरसि विदह्वते रोमहर्षश्च जायते ।

विशेष लक्षण –

- 1) वाताधिक अम्लपित्त – शूल, अंगसाद, जृंभा, स्निग्धोपशायिता,
- 2) पित्ताधिक अम्लपित्त – भ्रम, विदाह, स्वादुशीतोपशायिता
- 3) कफाधिक अम्लपित्त – गुरुत्व, छर्दि, रुक्षोष्णोपशायिता

अम्लपित्त मे वमन श्रेष्ठता का कारण –

व्याधीरामाशयोत्थोऽयं कफपिते तदाश्रये । तस्मादादित एवास्य मूलच्छेदाय बुधिमान् ॥
 अक्षीणबलमांसस्य वमनं संप्रकल्पयेत् । नान्यो मान्यः ऋमोद्यास्य शान्तये वमनादृते ॥
 शेष अनुवंधी दोष शमनार्थ – लंघन, लघुभोजन, सात्य व कालोचित शमन पाचन योग

दोषोत्कलेश मे – द्रव औषध निषेधपक्वाशयगत दोष – स्त्रंसनेन विनिर्हरेत्बलः अग्नि वर्धनार्थ –

लशुनस्य हरीतक्याः पिप्पल्याः सर्पिषस्तथा । मदिरायाश्च जीर्णायाः कालाग्निबलवृद्धये ॥

अम्लपित्त अपर नाम – शुक्रक

व्याधी वैशिष्ट्य – अनूपदेशो प्रायेण संभवत्येष देहिनाम् । तस्माज्जांगलजैरेनमौषधैः समुपक्रमेत् ॥
 अप्रशास्यति चैतस्मिन्नपि देशान्तरं वजेत् ॥

अम्लपित्त उपद्रव –

ज्वरतिसारपाण्डुत्व शूल शोथ अरूचि भ्रमैः ।

17) शोथचिकित्सा

हेतु – अत्यर्थ क्षार अम्ल कटू सेवन, दुष्प्रजाता स्त्री, कृच्छ्रतापूर्वक प्रसूत स्त्री, गर्भस्त्राव प्रकार – 6 1) वातज 2) पित्तज 3) कफज 4) सान्त्रिपातज
 5) आगंतुज व 6) विषज

असाध्यता –

नृणां तु पादप्रभवः स्त्रीणां च मुखसंभवः । उभयोर्यश्च गुह्यस्थः सर्वगश्च न सिध्यति ॥

- 1) पुरुषो मे पाद से उत्पन्न व मुख पर सर्पण करनेवाला
 - 2) स्त्रीयो मे मुख से उत्पन्न व पाद पर सर्पण करनेवाला
 - 3) स्त्री व पुरुषो मे गुह्यस्थानज व सर्वशरीरग शोथ असाध्य
- सर्व शोफो का मूल हेतु – वात (मारूतः सर्वशोफानां मूलहेतुरोदाहुतः)

चिकित्सा –

प्रातःकाल मे – श्रृंगबेर + गुड अथवा त्रिसमा गुटिका (गुड शुंठी हरीतकीम सर्व समभाग)

- अथवा वर्धमान पिप्पली प्रयोग
 - कटुकबिन्दु अवलेह प्रयोग
 - गोमूत्र अथवा क्षीरसह एरंडतैल प्रयोग

18) शूल चिकित्सा अष्टादशो अध्याय

प्रकार – 3 1) वातिक 2) पैतिक 3) कफज

तीलतैल प्रयोग – 1) वातज शूल मे द्राक्षा क्वाथ सह

2) पित्तज शूल मे शर्करा सह

फलतैल प्रयोग – शूल अतिरिक्त उरुस्तंभ कटिशूल उदावर्त प्लीह व गुल्म मे प्रयोग

19) अष्टज्वरचिकित्सि त्तोत्तराध्याय

वातज व वातकफज ज्वर मे उपयुक्त क्वाथ

लाक्षादी तैल निर्देश – वातकफज ज्वर मे उपयुक्त

1) कफज रोगो मे – वमन

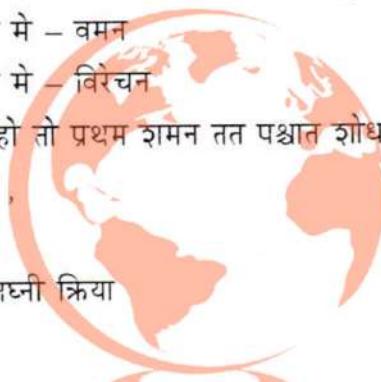
2) पित्तज रोगो मे – विरेचन

3) रोगी कृश हो तो प्रथम शमन तत पश्चात शोधन

आमज्वर मे – मण्डादी प्रयोग ,

वातज्वर मे – यवागु प्रयोग ,

विषोषधी से उत्पन्न ज्वर – पित्तघ्नी क्रिया



सान्निपातज ज्वर चिकित्सा –

1) सर्वप्रथम बलवान दोष की चिकित्सा

2) तीनो दोष समान हों तो – सर्वप्रथ कफ की चिकित्सा

20) अध्याय पूर्ण रूप से खंडित

21) मधुविशेषणीय अध्याय

शुरूवात मे खण्डित स्वरूप मे उपलब्ध

मधु गुण – नवसद्य क्षत मे रोहण, क्षत के कारण विषयुक्त व्रण मे संधान करता है ।

मधु व धृत समान मात्रा मे सेवन घातक

22) क्षीरगुणविशेषणीय अध्याय –

अष्ट क्षीर वर्णन – तुरंग नाम से घोड़ी के क्षीर का वर्णन

हस्तिनी न मानकर स्त्री व नारी इस प्रकार दो बार उल्लेख

बालक मे क्षीर श्रेष्ठत्व –

क्षीरं सात्यं बालानां क्षीरं जीवनं उच्यते । क्षीरं पुष्टिकरं वृद्धिकरं बलविवर्धनम् ॥

क्षीरमोजस्करं पुसां क्षीरं प्राणगुणावहम् । गर्भधानकरं क्षीरं बन्ध्यानामपि योषिताम् ॥

1) गोक्षीर – विरेचक व रसायन

2) माहिष क्षीर अजाक्षीर गुणधर्म – चरकसमान

ततपश्चात अध्याय खण्डित

23) पानीयगुणविशेषीय अध्याय

प्रारंभ मे खण्डित

हंसोदक उत्पत्ति – प्रावृट व प्रोष्ठपद के व्यतीत हो जाने पर होती है (शरद ऋतु मे)

शीतजल निषेध – गर्भिणी स्त्रीयो मे

शीतजल योग्य – स्वस्थ अथवा रूग्ण धात्री के लिए योग्य

उष्ण जल – बालको के सर्वदोष नष्ट करनेवाला

रक्तपित्त छोड़कर बालक के सर्व विकारो मे उष्णजल हितकर है ।

शिशु धात्री तथा गर्भिणी को भी उष्ण जल प्रयोग करना चहिए ।

बालको के लिए जल

1) शरद ऋतु मे – अन्तरिक्ष जल

2) हेमंत तथा शिशिर – सरोवर, नदी, ताडाग,

3) ग्रीष्म वसंत – बापी औज्जिद , प्रास्त्रवण,

4) वर्षा ऋतु मे – तपशीतल कौप जल

24) मांसगुण विशेषणीय अध्याय –

गर्भिणी मे मांसप्रयोग –

गर्भधानकरं मांसमन्ते पुष्टिकरं तथा । गर्भिणीनां च नारीणां वातप्रशमनं परम् ॥

शूल्य अंगारतप्त मांस – कफज रोगो मे हितकर होता है ।

गर्भावस्था व प्रसूतावस्था दोनो स्थितीयो मे मांसरस परम औषध

विभिन्न प्रकरो मे मांस श्रेष्ठत्व –

1) आनूप प्राणीयो मे- छाग मांस

2) भत्स्य मे – रेहिन मत्स्य

3) जलज प्राणीयो मे – शुक्त व कूर्म

4) पक्षीयो मे – वारट

5) मृग मांस मे – एनेय

6) प्रतुद मे – शुक

7) विश्किर मे – तित्तर

8) प्रसह मे – काक

25) देशसात्म्य अध्याय –

मध्य देश निवासी – सर्व रस (षड्गुण) का सेवन करते है

पूर्व दिशा के देशस्थ मधुर व शीतल स्वरूप होने से उनमे प्लीहरोग व गलगांड रोग प्राय अधिक होते है

ततपश्चात अध्याय व शोष खिलस्थान खंडित

शारंगधर संहिता

- मध्यम काल की एकमात्र संहिता** **काल – 13 वी शती**
रचना – 1) पूर्व खंड – 7 अध्याय – परिभाषा वर्णन
2) मध्यम खंड – 12 अध्याय – पंच विधि कषाय कल्पना वर्णन
3) उत्तर खंड – 13 अध्याय – पंचकर्म व नेत्र कल्पना

अध्याय = 32 श्लोक – 3200

- 1) परिभाषा प्रकरण – परमाणु से मान प्रारंभ . 30 परमानु = 1 ध्वंशी
 पुराण ग्रहण योग्य – 6 विंडंग पिपली धृत गुड मधु धान्य
 आर्द्र द्रव्य शुष्क की अपेक्षा द्विगुण लेने का निर्देश । अपवाद – गुड़ची कूटज वासा कुष्मांड वासा शतपुष्पा
 अनुक परिभाषा – भैषज्य कल्पना नोट्स

सर्वीर्यतावधी –

- 1) चूर्ण -- 2 मास
- 2) गुटिका अवलेह – 1 वर्ष
- 3) धृत तैल – 1 वर्ष 4 मास / 4 मास
- 4) लघुपाक औषधी – 1 वर्ष
- 5) आसव अरिष्ट धातवो रसाः – पुराण अधिकगुणवान



औषध संग्रहण –

- 1) अखिल कार्यर्थ – शारद ऋतु
- 2) वमन विरेचन हेतु – वसंतान्ते

ग्राह्य अंग –

- 1) अतिस्थूल जटा युक्त वृक्ष – मूल त्वक ग्राह्य
- 2) सूक्ष्म मूल – पूर्ण मूल ग्राह्य
- 3) न्यग्रोधादी – त्वच ग्राह्य
- 4) बीजकादी – सार ग्राह्य
- 11) अक्षोटक – मज्जा
- 9) विदारी – कंद
- 11) अक्षोटक – मज्जा
- 5) तालीसादी – पत्र ग्राह्य
- 6) त्रिफला – फल ग्राह्य
- 7) धातक्यादी – पुष्प ग्राह्य
- 8) स्नुहादी – क्षीर ग्राह्य
- 10) सर्ज – निर्यास

TIERRA

राशीभेद से ऋतुविभाजन –

- 1) ग्रीष्म – मेष व वृष्ट
- 2) प्रावृट – मिथुन कर्क
- 3) वर्षा – सिंह कन्या
- 4) शारद – तुल व वृश्चिक
- 5) हेमंत – धनु मकर
- 6) वसंत – कुम्भ मीन

यमदंष्ट्रा –

कार्तिक के अंतिम 8 दिन व मार्गशीर्ष के प्रथम 8 दिन = 16
 स्वल्प भुक्तो हि जीवती ।

नाडी परीक्षा –

करस्य अंगुष्ठ मूले धमनी या जीवसाक्षिणी । तच्चेष्टया सुखं दुःखं ज्ञेयं कायस्य पंडितैः ॥

दोष / स्थिती	नाडी	दोष / स्थिती	नाडी
वात	जलौका, सर्प	रक्तविकार	कोष्ठ व गुर्वी
पित्त	कुलिंग काक मण्डूक	आमदोष	गरीयसी
कफ	हंस, पारावत	ज्वर कोप	उष्ण व वेगवती
सान्धिपातज	लावा तित्तीर वर्ती	काम क्रोध	वेगवहा
द्विदोषज	कदाचित मंद कदाचित वेगवती	चिंता भय	क्षीण
असाध्य	स्थानविच्युत	दीप्तामि	क्षीण
प्राणनाशीनी नाडी	स्थित्वा स्थित्वा चलती अतीक्षीण	सुखितस्य	स्थिर व बलवती
क्षुधित	चपला गती	तृप्तस्य	स्थिर गती

नेत्र परीक्षण –

- 1) वातज – रुक्ष, धूम्रवर्णी, अरुण कोणगत
- 2) पित्तज – द्वीप देषी
- 3) कफज – ज्योतीर्हीन, व मलान्वित
- 4) त्रिदोषज – अन्तर्मग्न, भृशा सलिलस्त्रावी



जिहा परीक्षण –

- 1) वातज – शाकपन्नप्रभा, रुक्षा, स्फुरीता
- 2) त्रिदोषज – परिदग्धा खरस्पशा कृष्णा जिहा

मूत्र परीक्षा –

- 1) वात – पाण्डूर
- 2) पित्त – पीत नील
- 3) कफ – ध्वल फेनिल
- 4) रक्त – रक्तवर्ण

दूत परीक्षा –

- 1) दूत सजीव दिशा आकर बैठे – रोग साध्य
- 2) दूत मार्ग मे शुभ शागुन दिखे – रोगी के लिए अशुभ
- 3) वैद्य को शुभ शागुन दिखे – रोगी के लिए शुभ
- 4) स्वप्न मे जलौका भ्रमरी सर्प काटे – रोगी स्वस्थ हो जाना है

विष गुण -- 8 व्यवायी विकासी सूक्ष्म छेदी मदावह आग्नेय जीवितहर योगवाही

विशद द्रव्य – क्लेदच्छेदकर ख्यातो विशदो व्रणरोपणः ।

रंध – पुरुष मे 10 व स्त्री मे 13 माने गये हैं सेवनी – 7

त्वचा – 7 अवभासिनी लोहिता श्वेता ताम्रा वेदिनी रोहिणी स्थूला

दोष व धातु की निरूक्ती

शारीरदूषणाद् दोषा धातवो देहधारणात् । वातपित्तकफा ज्ञेया मलिनीकरणान्मलः ॥

दोषो मे वात को प्रधान बताया है –

पित्तं पंगु कफं पंगु पंगवो हि मलधातवः । वायुना यत्र नीयन्ते तत्र गच्छति मेघवतु ॥

पित्त के गुण – पित्तमुष्णं द्रवं पीतं नीलं सत्वगुणोत्तम् ।

कटुतिकरसं ज्ञेयं विदग्धं च अम्लतां व्रजेत् ॥

अग्न्याशये भवेत् पित्तं अग्निरूपं तिलोन्मितम् ।

अग्न्याशयस्थ पित्त अग्निरूप व तिलप्रमाण होता है ।

शारंगधर व सुश्रुत अनुसार धमनी का मूल – नाभी चरक – हुदय

कण्डरा – प्रसारणाकुंचनयोः अंगानां कण्डरा मताः ।

जीवात्मा प्रतिबन्ध भाव – काम ऋध मोह लोभ अहंकार दशेन्द्रिय बुधी

आशय –

- 1) पुरुषोमे – ७ श्लेष्माशय, आमाशय, अग्न्याशय, पवनाशय, मलाशय, बस्ती, जीवरक्ताशय उरः अग्न्याशय के उपर तिल अर्थात् क्लोम है
- 2) स्त्रीयो मे – $7 + 3 = 10$ (गर्भाशय – १ स्तन्याशय – २)
धरा गर्भाशयः प्रोक्तः स्तनौ स्तन्याशयौ मतौ ।

कला – ७

स्नायुभिश्च प्रतिच्छन्नान सन्ततांश्च जरायुणा । श्लेष्मणा वेष्टिताश्चापि कलाभागांस्तु तान् विदु ॥

उत्पत्ती – धातु व आशय के क्लेद को पक्व कर कला उत्पत्ती

मांसधरा, रक्तधरा, मेदोधरा, यकृतप्लीहा, आंत्रधरा, अग्निधरा, रेतोधरा

धातु	उपधातु	मल
1) रस	स्तन्य	जिह्वा नेत्र व कपोल मल
2) रक्त	रज	रंजक पित्त
3) मांस	वसा	कर्णमल
4) मेद	स्वेद	नासा दंत कक्षा मेह्र मल
5) अस्थी	दत	नख
6) मज्जा	केश	नेत्र मल
7) शुक्र	आंज	मुख स्निघ्नता व युवानपिडका

धातुओं की उत्पत्ती पित्त के तेज से होती है ।

स्नायु – स्नायवो बंधनं प्रोक्ता देहे मांसास्थिमेदसाम् ।

अस्थी – शरीर का आधार व सार कहा जाता है

मर्म – जीवाधार कहा है

पेशी – मांसपेश्यो बलाय स्युः अवष्टम्भाय देहिनाम् । पिशितमनुप्रविश्य पेशीर्विभजते अनिलः ॥

कण्डरा – प्रसारणाकुंचनयोः अंगानां कण्डरा मताः ।

हुदय – उरसि स्तनयोर्मध्ये रक्तश्लेष्मप्रसादजम् । मुकुलं पुण्डरीकेण सदृशं स्यादधोमुखम् ॥

फुफुस – उदान्वायोराधारः फुफुसः प्रोच्यते बुधैः ।

प्लीहा व यकृत – रक्त से उत्पन्न, रस का रन्जन करती है इसलिए रक्तवाही सिरा का मूल कहती है ।

क्लोम – रक्तनिलत्समुत्पन्नं कालीयकमिति स्मृतम् । जलवाहीसिरामूलं तृष्णाच्छादनकं तिलम् ।

वृक्क – वृक्ककौ पुष्टिकरौ प्रोक्तौ जठरस्थस्य मेदसः ।

वृषण – वीर्यवाही सिराधारौ वृषणौ पौरुषवहौ ।

लिंग – ग्रीवाहुदयबद्धाभ्यः कण्डराभ्यः प्रजायते । गर्भाधानकरं लिंगमयनं वीर्यमूत्रयोः ॥

गर्भाशय – शंखनाभ्याकृतिर्योनित्र्यावर्ता सा च कीर्तिता । तस्यासृतीये त्वावर्ते गर्भशश्या प्रतिष्ठितः ॥

प्राणवायु का स्थान – नाभी माना है (नाभीस्थः प्राणपवनः)

आहार प्रकार – ६ = भोज्य भक्ष्य चर्व लेह चोष्य पेय

गुदवली – ३ = प्रवाहिणी सर्जनी ग्राहिका

रक्तनिर्माण प्रक्रिया –

रसस्तु हुदयं याति समान मारुतेरितः । रण्जितः पाचितः स पित्तेनायाति रक्ताम् ॥

रस समान वायु द्वारा प्रेरित होकर हृदय में चला जाता है, व रंजक पित्त द्वारा उसका रंजन हो जाता है
रक्त महत्व –

रक्तं सर्वशरीरस्य जीवस्याधारमुत्तमम् ।
स्निग्धं गुरु चलं स्वादु विदग्धं पित्तवत् भवेत् ॥

रस से शुक्रत्व प्राप्ति – 1 मास मे रज मे प्राप्ति – 1 मास
पुत्र व कन्या वी उत्पत्ति मे = परमेश्वर को भी प्रमाण मानते हैं ।

वय अवस्था – 3 1) बाल्य – जन्म से 16 2) मध्य – 16-70 3) वृद्धावस्था – 70 के ऊपर

बालक औषध मात्रा –

बालस्य प्रथमे मासि देया भेषजरक्तिका ।

- 1) प्रथम मास – 1 रत्ती (क्षीरक्षोद्रसिताधृतसह)
- 2) एक वर्ष तक – 1-1 रत्ती वर्धन = 12 रत्ती
- 3) 16 वर्ष तक – प्रतिवर्ष 1-1 मासा वर्धन (माष) = 16 माष
- 4) 16-70 यही मात्रा रखे
- 5) 70 ऊपराने पुनः हास



प्रमुख उपचार कालावधी –

- 1) कवल व गंडूष – 5 वर्ष पश्चात
- 2) नस्य – 8 वर्ष पश्चात
- 3) विरेचन – 16 वर्ष पश्चात
- 4) मिथुन – 20 वर्ष पश्चात
- 5) सौवीरांजन प्रयोग – नित्य
- 6) रसांजन – स्त्रावणार्थ – 5 या 8 रात्रि मे

हास क्रम –

बाल्यं वृद्धिश्छविर्भात्त्वगदुष्टिः शुक्रविक्रमौ ।
बुध्दिः कर्मेद्रियं चेतो जीवितं दशतो हसेत ॥

TIERRA

वर्ष	हास	वर्ष	हास
10	बाल्य	70	शुक्र
20	वृद्धी	80	विक्रम
30	छवि	90	बुध्दी
40	मेधा	100	कर्मेद्रिय
50	त्वक	110	चेत
60	द-ष्टी	120	जीवित

प्रकृति लक्षण –

- 1) वात – अल्पकेशः कृशो रूक्षो वाचालश्लमानसः । आकाशचारी स्वज्ञेषु वातप्रकृतिको नरः ॥
- 2) पित्त – अपालपलितैर्व्याप्तो धीमान् स्वेदी च रोषणः । स्वज्ञेषु ज्योतिषां द्रष्टा पित्तप्रकृतिको नरः ॥
- 3) कफ – गम्भीरबुध्दीः स्थूलांगः स्निग्धकेशो महाबलः । स्वप्ने जलाशयालोकी इलेष्मप्रकृतिको नरः ॥

रोग गणना –

- 1) ज्वर – 25, 2) क्षय – 5 3) स्वरभेद – 6 वात पित्त कफ मंदज सान्निपातज धातुक्षयज
 4) मद– 7 वात पित्त कफ सान्निपातज रक्तज विषज मदज 5) भूतोन्माद – 20 6) शूल – 8
 7) परिणामशूल – 8 8) उदावर्त – 13, 9) शूकरोग – 24, 10) क्षुद्ररोग – 60. 11) विसर्प – 9
 एकदोषज द्वंद्वज वन्द्विदाहज व अभिघातज 12) वातज रोग – 80 13) पित्तज रोग – 40 14) कफज रोग 20
 15) रक्तज रोग – 10, 16) योनीरोग – 20, 17) गर्भरोग – 8, 18) स्तनरोग – 5, 19) स्त्रीदोष – 3
 अदक्षपुरुषोत्पन्न, सप्तलीवेहीत, दैवाज्ञात. 20) बालरोग – 22. 21) बालग्रह – 12,

इतर वर्णन –

- 1) स्नेहपान का काल – किंचीत सूर्योदय बताया है
- 2) अनुवासन मात्रा – उत्तम बल – 6 पल मध्यम बल – 3 पल हीन बल – 1 1/2 पल
- 3) बस्ती पीड़न काल – 30 मात्रा
- 4) शिरोबस्ती 12 अंगुल लंबाइ होनी चाहिए
- 5) शृंग – 10 अंगुल, जलोका – 1 हस्त, तुम्बी – 12 अंगुल, पद-1 अंगुल व सिरावेद सर्व शरीरगत रक्त विशोधन करते हैं
- 6) नेत्र कल्प – 7 सेक आस्थोतन पिंडी विडालक तर्पण पुटपाक अंजन
- 7) दंतवर्ती प्रयोग – नेत्रगत शुक्ररोग म बताया है व्रणबस्ती नेत्र – 8 अंगुल लम्बा मुद्र सम छिद्रं

प्रमुख योग –

- 1) रास्नापांचक क्वाथ – रास्ना, अमृता महादारू (देवदारू), नागर, एरंड सर्वांगगज साम वात, सप्तधातुगत साम वात
- 2) रास्नासप्तक क्वाथ – रास्ना, गोक्खुर एरंड, देवदारू, पुनर्नवा, गुडूची, आरग्वथ जंधाकतिग्रह, पार्श्वपृष्ठ उरुपीडा, आमवात
- 3) निम्बपत्रकल्क – व्रणशोधन रोपण, छर्दि कुछ लकड़ी 4) महानिम्ब कल्क – गृध्रसीनाशन
- 5) रसोन कल्क – तीलतैलसह सेवन – वातरोग व विषमञ्चरनाशन
- 6) लघुगंगाधर चूर्ण – सर्वांतिसार नाशन व प्रवाहिका, सग्राहकं परम, अनुपान – तक्र व गुड
- 7) बृहतगंगाधर चूर्ण – सर्वांतिसार व ग्रहणी अनुपान – क्षोद्रतण्डुलपानीय
- 8) योगराज गुगुल – त्रिदोषघ्न व रसायन रास्नादीक्वाथ संयुक्त – विविध वातरूजापह, काकोल्यादी क्वाथ – पित्तज रोग, आरग्वधादी क्वाथ – कफज रोग दार्वी क्वाथ – प्रमेह, गोमूत्र – पांडू, मध – मेदोवृद्धी निम्बक्वाथ – कुष्ठ छिन्ना क्वाथ – वातरक्त कणाक्वाथ – शोथ एवं शूल पाटला क्वाथ – मूषक विष त्रिफला क्वाथ – नेत्रार्ति पुनर्नवा क्वाथ – सर्वांदर
- 9) षड्बिंदु घृत – नाभीलेपात विरेचयेत
- 10) त्रिविक्रिम रस – ताम्र भस्म अजादुग्धात पाक ततपश्चात ताम्र व गंधक निर्गूडी स्वरसासह मर्दन मात्रा – 2 गुंजा अनुपान – बीजपूरक मूलजल
- 11) चन्द्रोदया वर्ती – शंख नाभी, बिभीतक मज्जा, पथ्या मनशिला पिप्पली, कुष्ठ वचा समभाग छागक्षीरेण सम्पित्य आकार – यवसमान मात्रा – हरेणुमात्रा
- 12) शाखोटक क्वाथ – इलीपद, मेदोरोग – गोमूत्रसह पान 13) पिप्पली मोदक – धातुगत ज्वर

- 14) कांकायन वटी – गुल्म 15) गृहधूम तैल – नासार्श
- 16) फलत्रिकादी क्वाथ – प्रमेह – त्रिफला, मुस्ता, दारूहरिद्रा, विशाला (इन्द्रवारूणी), – निशाकल्क सह पान
- 17) लघुमंजिष्ठादी क्वाथ – वातरक्त पामा कपालिका कुष्ठ रक्तमंडलजित
- 18) पथ्यादी क्वाथ – शिरोरोग अनुपान – गूड
- 19) अजमोदादी चूर्ण – अतिसार 20) दाढ़िमाष्टक चूर्ण – दाढ़िम – 8 पल, शर्करा – 8 पल, पिप्पली पिप्पलीमूल, यवानी, मरीच, धान्यक, जीरक, शुंठी प्रत्येकी – 1 पल, वंश – 1 कर्ष, त्वक एला नागकेशर – प्रत्येकी – 1 कोल. = अतिसार, गुल्म, ग्रहणी गलग्रह, मन्दानी, पीनस, कास
- 21) वटी पर्याय – गुटिका, वटी, वटिका, मोदक, पिण्डी, गुड, वर्ति
- 22) बाहुशाल गुड – सूरण कल्प – सूरण प्रमाण – 8 पल = अर्श नाशन
- 23) कैशोर गुगुल – अनुपान – कोष्ठ नीर अथवा पय, अथवा मंजिष्ठादी क्वाथ. गुटिकाप्रमाण – शाणमात्र सर्व प्रकार के कुष्ठ, त्रिदोषज वातरक्त
- 24) पिंड तैल – मंजिष्ठा सारिवा सर्ज यष्टी सिक्थ प्रत्येकी 1 पल, एरंड तैल 20 पल सिध्द करे। – वातरक्त

पंचकर्म –

- 1) पश्चात स्वेदन योग्य – गत शाल्य, मूढगर्भगट, काले वा अकाले प्रजाता
- 2) उभय विध (पूर्व व पश्चात) स्वेदन योग्य – भगन्दर, अर्श, अश्मरी
- 3) द्रवस्वेद प्रमाण – नाभी के 6 अंगुल उपरक द्रव पूरण

वमनादी मे प्रस्थ का मान –

वमने च विरेके च तथा शोणितमोक्षणे । सार्धन्योदशपल पस्थमाहूर्मनिषिणः ॥ = 13 1/2 पल

बस्ती –

- 1) मात्रा बस्ती – अनुवासन का भेद . मात्रा बस्ती मात्रा – 2 पल या उससे आधी बस्ती क्रम – प्रथम उत्क्लेशन, मध्ये दोषहर बस्ती, पश्चात संशमनीय बस्ती
- 1) उत्क्लेशन बस्ती – एरंडबीज, मधुक, पिप्पली, सैंधव, वच्च, हपुषा कल्क,
- 2) दोषहर बस्ती – शतब्धा, मधुक, बिल्व, कुटज फल, कांजी, गोमूत्र,
- 3) शोधन बस्ती – शोधन द्रव्य क्वाथकल्क, स्नेह व सैंधव युक्त
- 4) शमन बस्ती – प्रियंगु, मधुक, मुस्ता, रसांजन, क्षीर,
- 5) लेखन बस्ती – त्रिफला क्वाथ, गोमूत्र, क्षोद्र, क्षार, उसमे उषकादी गण प्रतिवाप.
- 6) बृंहण बस्ती – बृंहण द्रव्य क्वाथ, मधुर द्रव्य कल्क, क्षीर मांसरसयुक्त
- 7) पिच्छिल बस्ती – बदर, नागबला, शेलु(श्लेष्मातक) इनके पत्र, शाल्मली, धन्व, नागर, इनका सिध्द क्षीर, +मधु अजा औरभ्र (आवि), आदी रक्तयुक्त , मात्रा – 12 पल(48 तोला)
- 8) माधुतैलिक बस्ती – एरंड क्वाथ 8 पल, मधु व तैल 4 पल, शतपुष्पा अर्धा पल, सैंधव 1 कर्ष, एक मदनफल
- 9) दीपन बस्ती – मधु घृत दुग्ध तैल प्रत्येकी 1 प्रसृत, हपुषा सैंधव 1 अक्ष,
- 10) युक्तरथ बस्ती – एरंडमूल क्वाथ मधु तैल सैंधव व इनमे वच्चा पिप्पली मदनफल प्रक्षेप
- 11) सिध्द बस्ती – बिल्वादी पंचमूल क्वाथ, तैल, मागधी, मधु, सैंधव व यष्टी